TEERTHANKER MAHAVEER UNIVERSITY
TMU
MORADABAD
तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय
सम्यक् दर्शन • सम्यक् ज्ञान • सम्यक् चारित्र

Accredited with NAAC A Grade

12-B Status from UGC

Ahinsa Ka Vayvahar

BAJSCC102

CENTRE FOR DISTANCE AND ONLINE EDUCATION

CENTRE FOR DISTANCE AND ONLINE EDUCATION

Accredited with NAAC A Grade

12-B Status from UGC

AHINSA KA VAYVAHAR

(BAJSCC102)

REVIEW COMMITTEE

Prof. Dr. Manjula Jain
Dean (Academics)
Teerthanker Mahaveer University (TMU)

Prof. Dr. Vipin Jain
Director, CDOE
Teerthanker Mahaveer University (TMU)

Prof. Amit Kansal
Associate Dean (Academics)
Teerthanker Mahaveer University (TMU)

Prof. Dr. Manoj Rana
Jt - Director, CDOE
Teerthanker Mahaveer University (TMU)

PROGRAMME COORDINATOR

Dr. Manjula Jain
Professor
Department of Humanities
Centre for Distance and Online Education (CDOE)
Teerthanker Mahaveer University (TMU)

BLOCK PREPARATION

Dr. Dharmik Jain
Department of Humanities
Centre for Distance and Online Education (CDOE)
Teerthanker Mahaveer University (TMU)

Secretarial Assistance and Composed By:
Mr. Namit Bhatnagar

COPYRIGHT	:	Teerthanker Mahaveer University
EDITION	:	2024 (Restricted Circulation)
PUBLISHED BY	:	Teerthanker Mahaveer University, Moradabad

अनुक्रमणिका

इकाई: 1	अहिंसा की शक्ति एवं अहिंसात्मक प्रतिरोध, अहिंसा में असीम शक्ति, अहिंसा का प्रभाव, अहिंसात्मक प्रतिरोध की विशेषता और अहिंसक प्रतिरोधी के गुण, अहिंसात्मक प्रतिरोध के उदाहरण	01
इकाई–2	आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं पर्यावरणीय क्षेत्र में अहिंसा का व्यवहार	14
इकाई–3	अहिंसा और जीवन शैली, अहिंसा और आहार, वस्त्र, चिकित्सा आदि अहिंसा और उद्योग– धंधे व्यापार और विज्ञान, अहिंसा और शिक्षा	26
इकाई–4	पशु पक्षियों के प्रति क्रूरता एवं विधिक जागरूकता	42
इकाई – 5	अहिंसा और शांति, शांति का स्वरूप, अहिंसा और विश्वशांति, अहिंसा सापेक्षता एवं सह–अस्तित्व	53

Lukrd ¼ch-,-½ iFke o"kZ

fo"k;&vfgalk ,oa 'kkafr

f}rh; i=&vfgalk dk O;ogkj

ikB~;Øe

bdkbZ&1 अहिंसा की शक्ति एवं अहिंसात्मक प्रतिरोध, अहिंसा में असीम शक्ति, अहिंसा का प्रभाव, अहिंसात्मक प्रतिरोध की विशेषता, अहिंसक प्रतिरोधी के गुण, अहिंसात्मक प्रतिरोध के उदाहरण।

bdkbZ&2 आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं पर्यावरणीय क्षेत्र में अहिंसा का व्यवहार।

bdkbZ&3 अहिंसा और जीवन शैली, अहिंसा और आहार, वस्त्र, चिकित्सा आदि, अहिंसा और उद्योग धन्धे, व्यापार एवं विज्ञान, अहिंसा और शिक्षा।

bdkbZ&4 पशु–पक्षियों के प्रति क्रूरता एवं विधिक जागरूकता।

bdkbZ&5 अहिंसा और शांति, शांति का स्वरूप, अहिंसा और विश्व शांति, अहिंसाः सापेक्षता एवं सह–अस्तित्व।

इकाई–1 : अहिंसा की शक्ति एवं अहिंसात्मक प्रतिरोध, अहिंसा में असीम शक्ति, अहिंसा का प्रभाव, अहिंसात्मक प्रतिरोध की विशेषता और अहिंसक प्रतिरोधी के गुण, अहिंसात्मक प्रतिरोध के उदाहरण

संरचना

1.0 प्रस्तावना
1.1 उद्देश्य
1.2 अहिंसा की शक्ति
1.2.1 अहिंसा प्राकृतिक शक्तियों से अधिक आश्चर्यजनक
1.2.2 पूर्ण अहिंसक की शक्ति
1.2.3 अहिंसक अकेला ही साम्राज्य का मुकाबला कर सकता है
1.3 अहिंसा का प्रभाव स्थायी
1.4 अहिंसात्मक प्रतिरोध
1.4.1 अर्थ एवं विशेषता
1.4.2 अहिंसा का कार्य मौन किन्तु शक्तिशाली
1.4.3 प्रतिरोध का स्वरूप एवं विधि
1.4.4 अहिंसा का विरोधी पक्ष पर प्रभाव
1.4.4.1 आक्रमक को आश्चर्य, आत्मविश्वास का ह्रास
1.4.4.2 आक्रमक के मन में अन्तर्द्वन्द्व
1.4.4.3 आक्रमक का कमजोर पड़ना
1.4.4.4 अहिंसक प्रतिरोधी की बलवृद्धि
1.4.4.5 अहिंसक की सफलता
1.4.4.6 विरोधी की भी पराजय नहीं, हृदय परिवर्तन
1.5 अहिंसक प्रतिरोधी के गुण
1.6 अहिंसक प्रतिरोधियों के लिए नियम
1.7 हिंसा एवं अहिंसा के कार्य में भेद
1.8 अहिंसात्मक प्रतिरोध के उदाहरण
1.8.1 सामूहिक भी संभव है अहिंसात्मक प्रतिरोध
1.8.2 हंगरी का अहिंसात्मक प्रतिरोध
1.8.3 भारत में बिजौलिया का सत्याग्रह
1.9 गांधी के अहिंसात्मक प्रतिरोध
1.9.1 दक्षिण अफ्रीका में
1.9.1 भारत में चम्पारण का सत्याग्रह
1.9.1 वायकोम सत्याग्रह
1.9.1 बारडोली सत्याग्रह
1.9.1 अन्य सत्याग्रह
1.10 भारत का स्वाधीनता आंदोलन और अहिंसा
1.11 सारांश
1.12 अभ्यास प्रश्नावली

1.0 प्रस्तावना

इस इकाई में संक्षेप में अहिंसा की शक्ति और अहिंसक प्रतिरोध का अध्ययन करेंगे। इससे आपको यह जानने का अवसर मिलेगा कि कैसे अहिंसा हिंसा से श्रेयस्कर है, अहिंसा की शक्ति कैसे कार्य करती है, अहिंसक प्रतिरोध क्या है, कैसे हम इसका उपयोग कर विभिन्न समस्याओं/संघर्षों का शान्तिपूर्ण समाधान कर सकते हैं।

आपको ज्ञात होगा कि राष्ट्रपिता महात्मागांधी ने हमारे पूर्वज तीर्थंकर महावीर, गौतमबुद्ध एवं अन्य ऋषि-मनीषियों की अहिंसा की शक्ति को जानकर इसका सफल प्रयोग स्वतंत्रता-संग्राम में किया था तथा अहिंसक तरीके से भारत को स्वतंत्र कराने का चमत्कार कर दिखाया था। अहिंसक प्रतिरोध के ऐसे कुछ उदाहरण भी आपको इस पाठ में जानने को मिलेंगे जिनके माध्यम से आप अहिंसक प्रतिरोध की प्रक्रिया को भी जान सकेंगे। आपका यह ज्ञान अहिंसक एवं शान्तिपूर्ण समाज की स्थापना में सहयोग करेगा।

1.1 उद्देश्य

इस पाठ के निम्नांकित उद्देश्य हैं—

1. अहिंसा की शक्ति को जानना
2. अहिंसा की शक्ति के प्रभाव को जानना
3. अहिंसात्मक प्रतिरोध को जानना
4. अहिंसात्मक प्रतिरोध के प्रभाव की प्रक्रिया को जानना
5. अहिंसात्मक प्रतिरोध के प्रभाव को जानना
6. अहिंसा और हिंसा के कार्यों में अंतर को जानना
7. अहिंसक प्रतिरोध के उदाहरणों को जानकर उनका विश्लेषण करना सीखना।

1.2 अहिंसा की शक्ति एवं अहिंसात्मक प्रतिरोध

प्रथम पत्र में अहिंसा का अर्थ और स्वरूप जान लेने पर अब हम यह विचार करेंगे कि अहिंसा की शक्ति कितनी अद्भुत और अमोघ है, तथा यह कितनी व्यापक है। वर्त्तमान में लोगों को इसका ज्ञान बहुत कम है। वे हिंसा के वातावरण में रहते हैं, और उनके संस्कारों में हिंसा की ही प्रमुखता है। इसलिए उन्हें अहिंसा और प्रेम की शक्ति में श्रद्धा और विश्वास होना कठिन है तथापि गम्भीरता से विचार करने से यह स्पष्ट हो जाएगा कि अहिंसा में वह तेज और बल है जिसकी उन्होंने कल्पना भी नहीं की।

सामान्यत: कुछ व्यक्तियों का विश्वास हिंसा में होता है और कुछ व्यक्तियों का विश्वास अहिंसा में। वर्तमान में हिंसा में हमारा विश्वास अधिक है। यद्यपि अब 'जिसकी लाठी, उसकी भैंस' कहावत पुराने जमाने की मानी जाती है, अब सभ्यता-काल में उसे मान्यता देना ठीक नहीं समझा जाता, पर व्यवहार में अब भी हिंसा का चक्र बहुत चल रहा है। नये-नये अस्त्र-शस्त्र बने हैं, और बनते ही जा रहे हैं, जो एक-से-एक अधिक हिंसक हैं। प्रत्येक राज्य अपनी सेना और सैनिक सामग्री को अपना बल समझता है और उसी के आधार पर स्वयं को शक्तिशाली मानता है। परन्तु वास्तव में इस हिंसा-शक्ति से अहिंसा-शक्ति कहीं अधिक बलवती है; और मनुष्योचित तो है ही। गांधीजी ने कहा है—''मनुष्य की बुद्धि ने संसार के जो प्रचंड से प्रचंड अस्त्र-शस्त्र बनाये हैं, उनसे भी प्रचंड यह अहिंसा की शक्ति है। संहार कोई मानव धर्म नहीं है, मनुष्य अपने भाई को मार कर नहीं, बल्कि जरूरत हो तो उसके हाथ से मर जाने को तैयार रह कर स्वतंत्रता से जीवित रहता है। हत्या या अन्य प्रकार की हिंसा, फिर चाहे वह किसी भी कारण से की गयी हो, मानव ज ाति के विरूद्ध एक अक्षम्य अपराध है।''[1]

1.2.1 अहिंसा प्राकृतिक शक्तियों से अधिक आश्चर्यजनक

हम भाप, गैस या बिजली आदि से होने वाले कार्यों को देख कर चकित हो जाते हैं, पर यदि विचार करें तो अहिंसा उनसे भी अधिक आश्चर्यजनक है। गांधीजी ने एक प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा था—

'मैं यह नहीं जानता कि मनुष्य-जाति प्रेम के नियम या कानून का अनुसरण करेगी या नहीं। लेकिन इसमें मुझे परेशान होने की जरूरत नहीं। नियम अथवा कानून अपने आप काम करेगा, जिस तरह कि गुरुत्वाकर्षण का नियम, हम चाहे मानें या न मानें, अपना काम करता रहेगा। जिस प्रकार एक वैज्ञानिक प्राकृतिक नियमों के प्रयोग द्वारा आश्चर्यजनक बातें पैदा करता है, उसी तरह यदि कोई व्यक्ति, प्रेम का वैज्ञानिक यथार्थता के साथ प्रयोग करे, तो वह इससे अधिक आश्चर्यजनक बातें पैदा कर सकेगा। क्योंकि अहिंसा की शक्ति प्राकृतिक शक्तियों, उदाहरणार्थ बिजली आदि की शक्ति से कहीं अधिक अनन्त आश्चर्यजनक और सूक्ष्म है। जिस व्यक्ति ने हमारे लिए प्रेम के नियम अथवा कानून की खोज की, वह आजकल के किसी भी वैज्ञानिक से कहीं अधिक बड़ा वैज्ञानिक था। हमारी शोध अभी तक जितनी चाहिए, उतनी नहीं हुई है और इसलिए प्रत्येक के लिए उसके परिणाम देख सकना सम्भव नहीं है। प्रेम के इस कानून के लिए मैं जितना अधिक प्रयत्न करता हूं, उतना ही अधिक मुझे जीवन में आनन्द—इस सृष्टि की योजना में आनन्द—अनुभव होता है। इससे मुझे शान्ति मिलती है और प्रकृति के रहस्यों का अर्थ जान पाता हूं, जिनका वर्णन करने की मुझमें शक्ति नहीं है।'[2]

1.2.2 पूर्ण अहिंसक की शक्ति

गांधीजी के समय भारत ने जिस अहिंसा की शक्ति का अनुभव किया वह पूर्ण अहिंसा नहीं थी। गांधीजी ने कहा है—'मैंने भारत के सामने अहिंसा का आत्यन्तिक रूप नहीं रखा है। यद्यपि मेरी बुद्धि ने इसे पूरी तरह समझ और ग्रहण कर लिया है किन्तु अभी तक वह मेरे समस्त जीवन—सम्पूर्ण अस्तित्व—का अंग नहीं बन पाया है।'[3]

गांधी कहा करते थे—'मुझमें अहिंसा की अपूर्ण शक्ति है, यह मैं जानता हूं; लेकिन जो कुछ शक्ति है, वह अहिंसा की ही है। और कुछ नहीं। अहिंसा की यह शक्ति मैं एक नयी नीति के रूप में जगत को देना चाहता हूं।'

अहिंसा का लंबे समय प्रयोग करने के बाद भी गांधीजी ने कहा—'पूर्ण अहिंसक मनुष्य गुफा में बैठा हुआ भी सारे जगत को हिला सकता है। पर उस विचार के पीछे पूर्ण एकाग्रता और पूर्ण शुद्धि होनी चाहिए।'[4] इससे स्पष्ट है कि यदि अहिंसा पूर्ण रूप मे अमल में आये तो उसकी शक्ति कितनी अधिक होगी।

1.2.3 अहिंसक अकेला ही साम्राज्य का मुकाबला कर सकता है

गांधीजी ने कहा—'अहिंसा का अर्थ अत्याचारी की इच्छा के सामने चुपचाप झुक जाना नहीं है, वरन् इसका अर्थ है अत्याचारी की इच्छा के विरूद्ध अपनी सारी प्राण-शक्ति लगा देना। हमारे अस्तित्व के इस कानून के अन्तर्गत काम करते हुए अकेले व्यक्ति के लिए भी संभव है कि वह अपने सम्मान, अपने धर्म और अपनी आत्म रक्षा के लिए एक अन्यायी साम्राज्य की महान् शक्ति के विरूद्ध खड़ा हो जाए और इस प्रकार उस साम्राज्य के पतन या सुधार की नींव डाल दे।'

1.3 अहिंसा का प्रभाव स्थायी होता है

व्यक्ति हिंसा की ओर आकर्षित इसलिए हो जाता है कि उसका प्रभाव तत्काल दिखायी देता है, परन्तु वह प्रभाव क्षणिक ही होता है, और अनेक बार उसकी प्रतिक्रिया बहुत बुरी होती है। स्थायी हित के लिए व्यक्ति को दूर-दृष्टि रखनी होगी और ऐसा करने पर उसे अहिंसा को ही अपनाना होगा। गांधीजी ने कहा है—'हिंसा-प्रिय व्यक्ति जब किसी कार्य को करता है तो उसके प्रभाव का तुरन्त पता लगता है, परन्तु वह अस्थायी होता है। एक तरफ हिटलर तथा मुसोलिनी और दूसरी ओर स्टालिन के हिंसात्मक कार्यों का तत्काल प्रभाव पड़ा, परन्तु यह चंगेजखां द्वारा किये गये नर-संहार के समान ही क्षणिक सिद्ध हुआ। महावीर और बुद्ध के अहिंसात्मक कार्यों का प्रभाव अब भी है। समय बीतने के साथ इसका प्रभाव और भी गम्भीर तथा अक्षय होता जाता है और इसके बाद अन्ततोगत्वा एक दिन आता है, जब संसार विस्फारित नेत्रों से कहता है—यह चमत्मार है।'

गांधीजी ने फिर कहा—'हिंसा तो पानी के प्रवाह की तरह है। पानी को निकलने का रास्ता मिलते ही उसमें से उसका प्रवाह भयानक जोर से बहने लगता है। अहिंसा पागलपन से काम कर ही नहीं सकती। वह तो अनुशासन का सार तत्त्व है। किन्तु जब वह सक्रिय बन जाती है तब फिर हिंसा की कोई भी शक्ति उसे पराजित नहीं कर सकती।'

हम प्राय: अहिंसा की अपेक्षा हिंसा की शक्ति बहुत अधिक मानते हैं। यह हमारा भ्रम है क्योंकि साधारणतया हमने अहिंसा का उतना अभ्यास या अनुभव नहीं किया है, जितना हिंसा का। कहना चाहिए हमें हिंसा की अपेक्षा अहिंसा की निहित शक्ति का बहुत ही कम ज्ञान है। यदि व्यवहार में अहिंसा को अपना कार्य दिखाने का वैसा ही अवसर मिले जैसा हिंसा को मिलता है तो इसका चमत्कार निश्चित रूप से सामने आयेगा।

1.4 अहिंसात्मक प्रतिरोध

1.4.1 अर्थ एवं विशेषता

जब कोई व्यक्ति या समूह दूसरे व्यक्ति या समूह द्वारा किये जाने वाले किसी प्रकार के—सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक आदि दुर्व्यवहार, शोषण एवं अत्याचार का विरोध शांति और प्रेम पूर्वक, अपने विपक्षी के प्रति कोई दुर्भाव न रखते हुए और समाज के व्यापक हित का ध्यान रखकर करता है तो उसे अहिंसात्मक प्रतिरोध कहा जाता है। यह याद रखना जरूरी है कि जो लड़ने का साहस रखता है और फिर भी नहीं लड़ता, वही सच्चा अहिंसक प्रतिरोध है। कायर के हृदय में भय होता है, इसलिए वह प्रेम नहीं कर सकता और यदि वह प्रेम नहीं कर सकता तो सफल प्रतिरोधी नहीं हो सकता है।

''अहिंसा तीन-चतुर्थांश अप्रकट रहती है और जिस मात्रा में वह अप्रकट रहती है, उसी मात्रा में प्रभावशाली भी होती है। जब अहिंसा सक्रिय होती है, तो वह असाधारण वेग से आगे बढ़ती है और फिर वह चमत्कार का रूप ले लेती है। इस तरह लोक-मानस पर पहले अप्रकट रूप से परिणाम होता है और बाद में स्पष्ट रूप से दिखायी देती है।'' हमें यह विचार करना है कि अहिंसा की शक्ति अपना महान् कार्य किस प्रकार करती है, और कैसे हिंसक का मुकाबला करके उसकी क्रूरता मिटाने में सहायक होती है। इस प्रकार हम देखेंगे कि अहिंसात्मक प्रतिरोध की, अपने विरोधी की अपेक्षा क्या विशेषता है।

1.4.2 अहिंसा का कार्य मौन परन्तु बहुत प्रभावशाली होता है

हिंसा के पास कार्य के लिए स्थूल शस्त्रास्त्र होते हैं, पर अहिंसा अपने पास ऐसे साधन नहीं रखती है। वह अपना कार्य धूमधाम और कोलाहल से नहीं करती। वह तो शान्त और चुपचाप रह कर ही कार्य करती है। दूसरों को प्रायः पता भी नहीं लगता कि कुछ कार्य हो रहा है। बहुतों को आश्चर्य-जनक प्रतीत हो, पर अहिंसा अपना कार्य करती रहती है, और उसका काम विलक्षण होता है। गांधीजी ने कहा है, 'हिंसा का प्रयोग लोगों को बाह्य प्रतीकों द्वारा सिखाया जा सकता है। पहले तख्तों पर निशाना लगाया जाता है फिर लक्ष्य पर, और बाद में जानवरों पर। तब विनाश की कला में निष्णात होने का प्रमाण-पत्र दिया जाता है।' 'अहिंसक मनुष्य के पास कोई बाह्य साधन नहीं होता और इसलिए उसकी वाणी ही नहीं, बल्कि उसकी कृति भी प्रभावहीन मालूम होती है'

1.4.3 प्रतिरोध का स्वरूप एवं विधि

आचार्य तुलसी और आचार्य महाप्रज्ञ अहिंसात्मक प्रतिरोध के लिए कुछ सूत्र निश्चित करने की बात करते हैं। उनके अनुसार सर्वप्रथम देश, काल और परिस्थितियों का ज्ञान होना आवश्यक है। परिस्थितियों को देखते हुए किस कार्य को किस रूप में हाथ में लिया जाए, किस रूप में उसका संचालन किया जाए, इसका विवेक कार्य आगे बढ़ाने के लिए आवश्यक है। प्रतिरोधक का तटस्थ और विनम्र दृष्टिकोण विवेक जागरण के साथ आवश्यक है। दृष्टिकोण और प्रवृत्ति की विशुद्धता का होना अहिंसात्मक प्रतिरोध के लिए अनिवार्य है। किसी एक के प्रति सद्भाव और दूसरे के प्रति दुर्भाव रखना—स्वयं में हिंसा है। भारत चीन युद्ध के समय पं. नेहरु ने कहा था स्थितिवश हमें चीनियों से लड़ना पड़ रहा है, हम लड़ेगें किन्तु हमारे दिलों में उनके प्रति घृणा के भाव नहीं होने चाहिए।

आचार्य तुलसी अहिंसक प्रतिरोध की विधि पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं- 'अनुशासन, अभय, प्रेम और मनोबल का विकास हो तो अहिंसक प्रतिकार करने में कोई कठिनाई नहीं होगी। हमें जनता को इन चार बातों से दीक्षित करना चाहिए-(1) वह आक्रमण का अहिंसक प्रतिरोध करने के लिए आक्रांता का सहयोग न करें। (2) उसका शासन स्वीकार न करें (3) उसके अनुचित पत्र का विरोध करें तथा (4) जब तक आक्रांता पीछे न हट जाये तब तक प्रतिकार पद्धति में शिथिलता न आने दें। प्रतिकार की यह पद्धति कभी विफल नहीं होगी। यह सही है कि आक्रांता के साथ असहयोग करने पर कष्ट झेलने पड़ते हैं, उनका विरोध करने पर बाधाओं का सामना करना पड़ता है। किन्तु यह सब तब सहे जा सकते हैं जब अहिंसा व्यक्ति का आत्मधर्म बन जाता है।

1.4.4 अहिंसा का विरोधी पक्ष पर कैसे प्रभाव पड़ता है?

आचार्य महाप्रज्ञ लिखते हैं- "युद्ध, शस्त्र बल या पाशविक शक्ति में मनुष्य का विश्वास न हो तो वह युद्ध का अंत कर सकता है। युद्ध एक पक्ष से नहीं हो सकता, दोनों पक्ष लड़ते हैं, तब युद्ध होता है। एक लड़े और दूसरा न लड़े, वह आक्रमण हो सकता है, युद्ध नहीं। प्रत्याक्रमण न होने पर आक्रमण स्वयमेव शिथिल हो जाता है। जैसे झूठी अफवाहा. से आक्रान्ता को बल

मिलता है, वैसे ही प्रत्याक्रमण से भी उसे बल और वेग मिलता है इसलिए उससे लड़ो मत, उसकी शक्ति क्षीण हो जाएगी। प्रत्येक आवेग की यही स्थिति है। युद्ध भी एक आवेग है, एक पक्षीय होकर वह कभी भी प्रबल नहीं हो सकता।"

जब किसी हिंसक व्यक्ति का अहिंसक से विरोध होता है तो उसके मन तथा अन्य जनता पर उसका कैसा प्रभाव पड़ता है, उसे अपना विरोध हटाना और अहिंसक प्रतिरोधी से प्रेम-पूर्ण समझौता करने के लिए बाध्य होना पड़ता है—इस विषय पर रिचर्ड बी. ग्रेग ने अपनी पुस्तक में विस्तार से प्रकाश डाला है। उससे कुछ विचारणीय बिंदु संक्षेप में रखे जा रहे हैं।

1.4.4.1 आक्रमक को आश्चर्य; आत्म-विश्वास का ह्रास

कल्पना करें कि आक्रमक किसी ऐसे व्यक्ति को मारता है जो भय या क्रोध करके बदले में प्रहार करता है। ऐसी दशा में आक्रमक समझता है कि उसकी नीति ठीक है, क्योंकि प्रतिरोधी भी उसी नीति का अनुकरण कर रहा है। अपनी नीति में इस प्रकार विश्वस्त रहने के कारण उसका साहस बना रहता है और वह अपना हिंसक कार्य अधिकाधिक बलपूर्वक करता रहता है, इसमें उसको सफलता मिलने की आशा रहती है। अब दूसरा उदाहरण लें—आक्रमक के हिंसात्मक प्रयोग करने पर प्रतिरोधी डरता नहीं, क्रोध नहीं करता, प्रत्याक्रमण नहीं करता, प्रसन्न रहता है, झगड़े की जांच के लिए और सत्य बात मानने के लिए तैयार है। आक्रमक का विरोध केवल नैतिक रूप में करता है, अहिंसात्मक प्रतिरोध करता है। ऐसी दशा में आक्रमक को आश्चर्य हुए बिना नहीं रहेगा, क्योंकि ऐसे प्रतिकार की उसे आशा न थी। अब वह हक्का-बक्का रह जाता है, यह निश्चय नहीं कर पाता कि क्या करना चाहिए। उसका प्रहार करने का नैतिक आधार चला जाता है। वह आत्म-विश्वास खो बैठता है। इसके विपरीत, आक्रान्त अधिकाधिक कष्ट सहने के लिए तैयार रहता है, वह आक्रमक को आक्रमण के लिए निमंत्रण देता है। उसे अपनी नीति में विश्वास है, वह अहिंसा-मार्ग की श्रेष्ठता समझता है, और अपना नैतिक संतुलन बनाये रखता है।

1.4.4.2 आक्रमक के मन में अन्तर्द्वन्द्व

अहिंसक प्रतिरोधी के दृढ़तापूर्ण उदार व्यवहार के आक्रान्त के मन में क्रमशः उच्च और कृपा पूर्ण भावनाएं जागृत होती हैं जो उसकी हिंसात्मक भावनाओं से लड़ने लगती हैं। इस प्रकार उसके मन में दो परस्पर विरोधी भाग हो जाते हैं। अहिंसात्मक प्रतिरोधी की बातों का परिणाम शायद शीघ्र ही न हो, किन्तु उनके बार-बार दोहराने से परिणाम उतना ही निश्चयात्मक होता है, जिस प्रकार व्यापारिक विज्ञापनों के बार-बार दोहराने से हुआ करता है। आक्रमक को थोड़े समय में ही यह अनुभव होने लगता है कि विरोधी को कायर समझ कर उसने भूल की; उसे चिंता होने लगती है कि अब हिंसात्मक व्यवहार करके कहीं और भूल न कर बैठूं। उसके मन में अपनी नीति के विषय में शंका हो जाती है। इस अन्तर्द्वन्द्व के कारण वह अपने हिंसक कार्यक्रम को समेटने की बात सोचने लगता है।

1.4.4.3 आक्रमक कमजोर पड़ता जाता है

इसके साथ ही एक बात और भी होती है। प्रत्येक व्यक्ति या समूह की यह स्वाभाविक इच्छा होती है कि मैं अपने से संबंधित दुनिया में अच्छा, होशियार, शक्तिमान समझा जाऊं। इधर आक्रमक यह अनुभव करने लगता है कि कुछ लोगों ने मेरी भूल देखली है, कुछ ने उसका समाचार पढ़ लिया है और कुछ ने उसकी बात सुनली है, और जगह-जगह इसकी प्रतिष्ठा घट रही है। लोकमत मेरे साथ नहीं है—उस व्यक्ति या समूह को कौन अच्छा कहेगा, जो शान्त स्वभाव और निहत्थे व्यक्ति पर आक्रमण करे। अस्तु, अब आक्रमक को यह भान होने लगता है कि शारीरिक या पाशविक शक्ति से भिन्न और इससे बढ़ कर भी कोई शक्ति है, और वह है आत्म-शक्ति। हिंसा-मार्ग निम्नकोटि का है, अहिंसा का पथ ही श्रेष्ठ और मनुष्योचित है। आक्रमक अपनी नीति में आस्था नहीं रहती, इस प्रकार वह शारीरिक थकान के साथ मानसिक परेशानी अनुभव करता है, और अधिकाधिक कमजोर पड़ता जाता है।

1.4.4.4 अहिंसक प्रतिरोधी की बल-वृद्धि

इसके विपरीत, अहिंसक प्रतिरोधी की स्थिति कई कारणों से मजबूत होती है—

1. उसकी कार्यपद्धति का आधार प्रारम्भ से ही नैतिक होता है, जो आक्रमक को चकित करता है।
2. वह आश्चर्य की स्थिति में नहीं होता। वह कष्ट उठाने या जो भी परिणाम हो, उसके लिए सहर्ष तैयार रहता है।
3. वह आत्म-संयम और क्रोधाभाव के कारण अपनी शक्ति को सुरक्षित रखता है। वह थकता या घबराता नहीं।

4. उसे अपने कार्यक्रम में श्रद्धा और विश्वास होता है, वह निरंतर यह अनुभव करता है कि वह एक शुभ कार्य में लगा है, उसका शरीर, मन, इच्छा, शक्ति और आत्मा सब एक सूत्र में ग्रथित होकर एक ही उद्देश्य के लिए काम कर रहे हैं।

1.4.4.5 अहिंसक की सफलता

इस प्रकार जब हिंसा का प्रतिरोध अहिंसात्मक पद्धति से होता है तो हिंसक शक्ति क्रमशः परन्तु निश्चित रूप से परास्त होती है और लोकमत भी उसके विरूद्ध बढ़ता है। दूसरी ओर, अहिंसक शक्ति को अपनी अन्तिम विजय में दृढ़ विश्वास बना रहता है। कष्ट भोगने और मृत्यु में भी अहिंसक प्रतिरोधी अपनी सफलता और विजय मानता है, क्योंकि उसका कार्य प्रत्येक दशा में मानवता का मान बढ़ाने वाला होता है। वह निष्ठा-पूर्वक अपना कर्त्तव्य-पालन करता है, उसी के लिए जीता है, और आवश्यक होने पर उसी के लिए प्राणोत्सर्ग करता है। अस्तु, अहिंसात्मक प्रतिरोध में विफलता या पराजय का प्रश्न ही नहीं; दूसरों की दृष्टि में वह घाटे या नुकसान का कार्य ज्ञात होने पर भी उसमें तो वस्तुतः सफलता और विजय ही है।

आचार्य महाप्रज्ञ कहते हैं-"अहिंसा में जो शक्ति है, वह हिंसा या दण्ड में नहीं है। पर दूसरों के नियंत्रण के लिए इसका कोई उपयोग नहीं है। लोगों का विश्वास है कि दूसरों का नियंत्रण दण्ड शक्ति ही कर सकती है। अनेक राष्ट्रों में अन्याय, अत्याचार और उत्पीड़न के विरोध में हिंसक क्रांतियां हुईं। वे अपने लक्ष्य में सफल हुई। इससे यह विश्वास दृढ़ हो गया कि हिंसा सफल होती है। हिंसा की सफलता का अर्थ है-भौतिक लक्ष्य की पूर्ति। आज अहिंसा की सफलता का मापदण्ड भी यही है, आर्थिक कठिनाईयों को मिटा सके तो अहिंसा सफल हुई मानी जायेगी और उन्हें न मिटा सकी तो विफल। यह बहुत बड़ी भ्रांति व भूल है, अहिंसा को लक्ष्यहीन किया जा रहा है। अहिंसा का लक्ष्य जीवन शोधन है। उसे अधिक प्रभावशाली किया जाए तो कठिनाईयों को पार करने का मार्ग स्वयं प्रशस्त हो जायेगा। अहिंसा की सफलता व्यवस्था के परिणाम से नहीं आंकी जा सकती। उसकी सफलता तो जीवन की पवित्रता में निहित है मानवीय सफलता का सर्वाधिक उत्कर्ष स्वतंत्रता है और वह अहिंसा के द्वारा प्राप्त हो सकती है।

1.4.4.6 विरोधी की भी पराजय नहीं; हृदय-परिवर्तन

अहिंसात्मक प्रतिरोध की विशेषता यह है कि इसमें आक्रान्त यह नहीं चाहता कि आक्रमणकारी की पराजय हो, उसको नीचा दिखाया जाए, उसको कष्ट पहुंचाया जाए। अहिंसक प्रतिरोधी की आकांक्षा यही होती है कि वह अपने सद्व्यवहार, सत्य-निष्ठा, कष्ट-सहन और प्रेम-भाव से अपने विपक्षी के हृदय पर ऐसा प्रभाव डाले कि उसमें उच्च भावनाएं जागृत हों, उसका हृदय-परिवर्तन हो। इस सम्बन्ध में रिचर्ड बी. ग्रेग ने लिखा है-

'इसमें संदेह नहीं कि जब एक व्यक्ति स्वेच्छा पूर्वक किसी एक विश्वास या आदर्श के लिए कष्ट सहन कर रहा हो, तो उस दृश्य से आक्रमणकारी और दर्शकों का हृदय द्रवित हो जाता है, उनका हृदय परिवर्तन होने लगता है और उस व्यक्ति के साथ बन्धुत्व भावना उत्पन्न होने लगती है।'

'अहिंसात्मक प्रतिरोध एक ऐसा साधन है, जिसके द्वारा एक के विचार और अनुभूतियां दूसरे के भीतर संचारित हो जाती हैं। वाणी और शरीर की भावभंगी से तथा दीर्घकालीन परिस्थितियों में लेखों और पत्र-व्यवहार से भी, और जहां शब्दों की सम्भावना नहीं है वहां अपने आचरण-मात्र से ही विचार और अनुभूतियां दूसरे तक पहुंच जाती हैं।'

'पूर्ण स्वरूप में अहिंसात्मक प्रतिरोध मानव समाज की एकता या विश्व-बन्धुत्व के विचार का एक प्रयत्न है। जिसका प्रभाव विरोधी के मन और हृदय पर अवश्य पड़ता है। इससे मनुष्य की आत्मिक शक्ति और कष्टों एवं आपत्तियों पर विजयी होने की उसकी क्षमता का प्रदर्शन हो जाता है।'

1.5 अहिंसक प्रतिरोधी के गुण

अहिंसक प्रतिरोधी की सफलता और विजय के लिए यह आवश्यक है कि उसके चरित्र या स्वभाव में प्रेम, आत्मविश्वास, श्रद्धा, साहस, त्याग, सच्चाई, नम्रता, आत्म-निग्रह, अपरिग्रह आदि विविध नैतिक गुण होने ही चाहिए। तभी वह आक्रमणकारी से अधिक सबल हो सकता है। सामूहिक अहिंसात्मक प्रतिरोध का नेतृत्व करने वाले में तो ये गुण असाधारण रूप से उन्नत होने चाहिए, क्योंकि उसका प्रभाव उसके सब साथी कार्यकर्ताओं पर विशेष रूप से पड़ने वाला है।

अहिंसक प्रतिरोधी को शान्ति-सैनिक कहा जा सकता है। शांति-सैनिकों के विषय में गांधीजी ने इस आशय के विचार प्रगट किये थे—'इनमें मुख्य गुण यह होना चाहिए कि वह अपने विश्वास के लिए प्राण न्यौछावर कर सकें। यह सेना बुड्ढ़ों, औरतों, बच्चों, अंधों, लंगड़ों और रोगियों का भी स्वागत कर सकती है। इससे स्पष्ट है कि इस सेना में अधिक जनता भाग ले सकती है। इस सेना को शस्त्रों की आवश्यकता नहीं होती। इसके सैनिकों को यह सीखना होता है कि रोगियों की सेवा किस तरह की जाए, अपनी जान जोखम में डाल कर भी दूसरों की रक्षा कैसे की जाए। शान्ति-सैनिक किसी को भी शत्रु नहीं मानता। जो व्यक्ति उसे शत्रु समझें, उनके लिए भी उसके हृदय में प्रेम और दया होती है। वह उनके सुधार या उत्थान का इच्छुक रहता है। उनमें भूख-प्यास, सर्दी-गर्मी, वर्षा, मार-पीट या दूसरी तकलीफें सहने की क्षमता हो। उनमें यह साहस और चतुराई भी होनी चाहिए कि लोगों को आग, बाढ़ आदि से बचा सक. और लड़ाई दंगे के बीच में पड़कर लड़ने वालों से शान्त रहने के लिए अनुरोध कर सकें।'

अहिंसक प्रतिरोधी की विशेषता के बारे में आचार्य तुलसी कहते हैं- "अहिंसक प्रतिरोध के लिए आंतरिक क्षमता को बढ़ाना आवश्यक है। उसकी अर्हता के लिए तीन कसौटियां प्रस्तुत की जा सकती हैं।

1. वह अभय होगा, मौत से नहीं डरेगा।

2. वह प्रेम से ओत-प्रोत होगा, मानवीय एकता में अटूट आस्था रखेगा। आक्रान्ता के प्रति मन में घृणा नहीं लायेगा।

3. वह मनोबली होगा, अन्याय से असहयोग करने की भावना को किसी भी स्थिति में नहीं छोड़ेगा।"

आचार्य तुलसी कहते हैं- "अभय, प्रेम और मनोबल की दीक्षा से दीक्षित व्यक्ति आक्रमण को जिस तत्परता से विफल कर सकते हैं उस तत्परता से वे सैनिक भी नहीं कर सकते जो शस्त्र सज्जित और शरीर बल से समर्थ होते हैं।" अहिंसा एवं प्रेम की शक्ति में हमारी अगाध निष्ठा होनी चाहिए।

1.6 अहिंसक प्रतिरोधियों के लिए नियम

अहिंसक प्रतिरोधी सत्याग्रही होते हैं और सत्याग्रहियों के लिए गांधीजी के बताये कुछ नियम ये हैं—

1. सत्याग्रहियों में सामान्य ईमानदारी अवश्य होनी चाहिए।

2. उन्हें अपने सेनापति के आदेशों का हृदय से पालन करना चाहिए। कोई बात मन में छिपा कर नहीं रखनी चाहिए।

3. उन्हें न सिर्फ अपनी व्यक्तिगत स्वतंत्रता, न केवल अपनी सम्पत्ति, जमीन, नगद पैसा आदि ही, बल्कि अपने घर वालों की आजादी और सम्पत्ति—सब कुछ खोने को तैयार रहना चाहिए और गोलियों, संगीनों या उत्पीड़न द्वारा धीरे-धीरे मृत्यु तक का प्रसन्नता पूर्वक सामना करने की उनकी तैयारी रहनी चाहिए।

4. उन्हें 'शत्रु' के प्रति या आपस में मन, वचन या कर्म से कोई हिंसा का भाव नहीं रखना चाहिए।[1]

कुछ अन्य आवश्यक बातें—अहिंसा के सम्बन्ध में गांधी जी ने कुछ और बातें भी निर्दिष्ट की हैं-

1. अहिंसा परम श्रेष्ठ मानव धर्म है; पशु-बल से वह अनन्त गुना महान् और उच्च है।

2. अन्ततोगत्वा वह उन लोगों को कोई लाभ नहीं पहुंचा सकती जिनकी उस प्रेम रूपी परमेश्वर में सजीव श्रद्धा नहीं है।

3. मनुष्य के स्वाभिमान और सम्मान-भावना की वह सब से बड़ी रक्षक है। हां, वह मनुष्य की चल-अचल सम्पत्ति की हमेशा रक्षा करने का आश्वासन नहीं देती—हालांकि अगर मनुष्य उसका अच्छा अभ्यास करले तो शस्त्रधारियों की सेनाओं की अपेक्षा वह इसकी अधिक अच्छी तरह रक्षा कर सकती है। यह तो स्पष्ट है कि अन्याय से अर्जित सम्पत्ति तथा दुराचार की रक्षा में वह बिल्कुल भी सहायक नहीं हो सकती।

4. जो व्यक्ति और राष्ट्र अहिंसा का अवलम्बन लेना चाहें, उन्हें आत्म-सम्मान के अतिरिक्त अपना सर्वस्व (राष्ट्रों को तो एक-एक आदमी) गंवाने के लिए तैयार रहना चाहिए। इसलिए वह दूसरे राष्ट्रों को हड़पने अर्थात् आधुनिक साम्राज्यवाद से, जो कि अपनी रक्षा के लिए पशु-बल पर निर्भर रहता है, बिल्कुल मेल नहीं खा सकती।

5. अहिंसा एक ऐसी शक्ति है जिसका सहारा बालक, युवा, वृद्ध, स्त्री-पुरुष सब ले सकते हैं, बशर्ते कि करुणा तथा मनुष्य-मात्र में उनकी सजीव श्रद्धा हो। जब हम अहिंसा को अपना जीवन-सिद्धान्त बनालें तो वह हमारे सम्पूर्ण जीवन में व्याप्त होनी चाहिए। कभी-कभी उसे पकड़ने और छोड़ने से लाभ नहीं हो सकता।

6. यह समझना भारी भूल है कि अहिंसा केवल व्यक्तियों के लिए लाभदायक है, जन समूह के लिए नहीं। जितना वह व्यक्तियों के लिए धर्म है, उतना ही वह राष्ट्रों के लिए भी धर्म है।''

गांधीजी ने यह भी कहा है—'उदारता तो अहिंसा का अवयव है। उससे रहित अहिंसा अपंग है, इसलिए वह चल ही नहीं सकती।' 'अपूर्ण आत्म-शुद्धि के प्रयत्न में मर मिटना अहिंसा की शर्त है।'

1.7 हिंसा और अहिंसा के कार्य में भेद

हिंसा और अहिंसा के रास्ते बिल्कुल अलग-अलग हैं। सूत्र रूप से उनका भेद किशोरलाल मश्रूवाला के शब्दों में इस प्रकार दिखाया जा सकता है-

हिंसा	अहिंसा
1. हिंसा के मूल में प्रतिपक्षी के बल का डर रहता है, और यह अपना हिंसा-बल प्रतिपक्षी की अपेक्षा बढ़ाकर ही जय की आशा करती है।	अहिंसा का दूसरा नाम निर्भयता कहा जा सकता है। इसका बल प्रतिपक्षी की न्यूनता पर नहीं अपनी निर्भयता पर है।
2. हिंसा प्रतिपक्षी में डर पैदा करके उसे अपने वश में करने की आशा करती है।	अहिंसा प्रतिपक्षी को अभयदान देकर जीतने की आशा रखती है।
3. भयमूलक होने के कारण हिंसा में कुटिल नीति, असत्य, गुप्तता, छल-प्रपंच आदि का कुछ-न-कुछ आधार लिये बिना काम नहीं चलता। केवल अपना हिंसा-बल अधिक होने से ही जय नहीं मिलेगी, उसके साथ कुटिल नीति की कुशलता का बहुत आधार रहता है।	अहिंसा में आदमी जितना सरल, सत्य-प्रिय, कुटिल नीति रखने के अयोग्य हो, उतना ही वह युद्ध की योजना अधिक स्पष्ट रूप से कर सकता है। इसके विरोधी की कुटिलता उसी पर भारी पड़ती है और जैसे जाल में हवा नहीं पकड़ी जा सकती, वैसे ही अहिंसा की सरलता हिंसा की कुटिलता में नहीं फंस सकती।
4. हिंसा की वीरता साहसयुक्त है, पर भय-मुक्त नहीं। इसमें मरने का डर रहता है, पर जोखम उठाने की तैयारी रहती है। इस प्रकार हिंसा की वीरता आवेश वाली और उत्तेजना पर आधारित है।	अहिंसा की वीरता में आवेश और उत्तेजना से पैदा होने वाला साहस नहीं होता। इसकी वीरता निर्भयता में है। यह दृढ़ता-पूर्वक ठंडे मस्तिष्क से विचार करती है और आगे बढ़ती है।
5. हिंसा में जय के लिए कुशल सेनापति की होशियारी अनिवार्य है, इसलिए उसको बचाये रखना आवश्यक माना जाता है। इसमें एक प्राणी के लिए लाखों सैनिकों के प्राण गंवाने पड़ें तो बुरा नहीं माना जाता।	अहिंसा में बहुधा सब के सब मनुष्यों का बलिदान जय दिलाता है। इसका सेनापति अपने प्राणों की इतनी कीमत नहीं आंकता कि उसको बचाने के लिए खटपट की जाए। अहिंसा मानती है कि उसका बलिदान लाखों की रक्षा करने के साथ ही जय को नजदीक लाता है।
6. हिंसा में कुशल सेनापति का मरना बड़ी सेना की हार है।	अहिंसा में सेनापति के बलिदान से मानों वह पूरी सेना में व्याप्त हो जाता है।
7. प्राणों के समान ही धन-सम्पत्ति को दुश्मन के हाथ में न पड़ने देने के लिए अनेक युक्तियां रचनी पड़ती हैं।	अहिंसा में सर्वस्व-त्याग को सद्गुण मानने के कारण इसकी रक्षा के लिए युक्ति-रचना को त्याज्य माना जाता है।
8. हिंसा में जवान और शक्तिशाली ही उपयोगी होते हैं।	अहिंसा में निर्बल, बालक,स्त्री-पुरुष सभी समान उपयोगी होते हैं।

1.8 अहिंसात्मक प्रतिरोध के उदाहरण

गांधीजी ने कहा है—''यदि अहिंसात्मक प्रतिरोध जनता को प्रभावित नहीं कर सकता तो व्यक्तियों के लिए भी उसका विकास करना शक्ति की बरबादी है। मैं उसे ईश्वर का सर्वोत्तम वरदान समझता हूं, और ईश्वर के सभी वरदान उसकी समस्त सृष्टि की सामान्य सम्पत्ति हैं, न कि कुछ मठों में रहने वाले साधु-संन्यासियों की। यदि उनके आविष्कार और दावे सत्य हों तो

वे जनता के व्यवहार योग्य चाहिये। यदि सत्य केवल कुछ लोगों की सम्पत्ति नहीं है तो उसी का दूसरा रूप अहिंसा भी केवल कुछ लोगों की वस्तु कैसे हो सकती है?"

अहिंसात्मक प्रतिरोध व्यक्तिगत रूप से तो प्राचीन समय से होते आये हैं, पर सामूहिक प्रतिरोध की ओर विशेष ध्यान गांधीजी के विचारों और प्रत्यक्ष उदाहरणों के कारण दिया जाने लगा है। हम यहां सामूहिक रूप से किये जाने वाले अहिंसात्मक प्रतिरोधों का ही कुछ परिचय देंगे। इससे पूर्व यह जान लेना आवश्यक है कि क्या सामूहिक प्रयोग संभव है?

1.8.1 सामूहिक भी सम्भव है, मनोवैज्ञानिक पहलू

बहुत से व्यक्ति सामूहिक अहिंसात्मक प्रतिरोध को आश्चर्य की दृष्टि से देखते हैं। वे अहिंसात्मक व्यवहार को व्यक्ति तक ही सीमित समझते हैं, इसके सामूहिक रूप में होने की बात उनके गले नहीं उतरती। गांधीजी ने कहा था — हम लोगों के हृदय में इस झूठी मान्यता ने घर कर लिया है कि अहिंसा व्यक्तिगत रूप से ही विकसित की जा सकती है और वह व्यक्ति तक ही मर्यादित है। अहिंसा सामाजिक धर्म भी है। सामाजिक धर्म के तौर पर अहिंसा विकसित की जा सकती है, यह मनवाने का मेरा प्रयत्न और प्रयोग है।

सामूहिक अहिंसात्मक प्रतिरोध के मनोवैज्ञानिक पहलू पर रिचर्ड बी. ग्रेग ने अपनी पुस्तक 'अहिंसा की क्रान्ति' में विस्तार-पूर्वक प्रकाश डालते हुए कहा है — हिंसक के क्रोध और भय को दूर करने से उसकी हिंसा कम होती है। उन्होंने कहा — 'भय और क्रोध इन दोनों मानसिक आवेशों का परस्पर बड़ा सम्बन्ध है। दोनों का उद्‌गम कारण एक ही है-अर्थात् कष्टदायक, खतरनाक या अप्रिय वस्तु या परिस्थिति से व्यक्ति को पृथक् करना। यदि व्यक्ति समझता है कि वह उस वस्तु या परिस्थिति से बलवान है तो क्रोध का भावावेश होता है, और यदि वह समझता है कि वह उस वस्तु या परिस्थिति से कमजोर है तो भय का भावावेश होता है। घृणा स्थगित किये हुए या असफल क्रोध का ही रूप है। भय में किसी-न-किसी प्रिय वस्तु, परिस्थिति या अपने प्राण की हानि की आशंका रहती है। भय या क्रोध दोनों का आधार संभावनीय हानि है। यदि हानि की आशंका हटा दी जाए तो भय या क्रोध दोनों हट जाते हैं।'

'भय के साथ पलायन की स्वाभाविक वृत्ति रहती है, और क्रोध के साथ लड़ाकूपन की स्वाभाविक वृत्ति रहती है। हम सब जानते हैं कि हिंसात्मक युद्ध-कला में शिक्षण और अनुशासन द्वारा भय का आवेश और पलायन की वृत्ति का संयमन हो जाता है। चूंकि यह बात सम्भव है, इसलिए हमें यह भी सम्भव मानना चाहिए कि क्रोध का आवेश और लड़ाकू वृत्ति भी शिक्षण और अनुशासन से संयमित हो सकती है। इसी कारण 'सामूहिक सत्याग्रह' भी सम्भव है।'

'सामूहिक भावनाओं द्वारा सामूहिक कार्यों के नियंत्रण की शक्ति का अस्तित्व है, और ये बातें इच्छापूर्ण प्रयत्न से विकसित भी हो सकती हैं। इस कारण भी सिद्ध होता है कि सामूहिक सत्याग्रह सम्भव है।'

'...सैनिक-अनुशासन में भय और क्रोध का आंशिक और अल्पकालिक संयमन आवश्यक होता है। अहिंसात्मक अनुशासन सम्भवतः संख्या की दृष्टि से कुछ अधिक कठिन हो, क्योंकि इसमें भय और क्रोध के पूर्ण संयमन की आवश्यकता है, किन्तु गुण या तत्त्व की दृष्टि से यह कुछ अधिक कठिन नहीं है, क्योंकि इन दोनों भावावेशों का उत्पत्ति-कारण एक ही है और लक्ष्य (व्यक्तिगत आत्म संरक्षण द्वारा जाति-संरक्षण) भी समान ही है। यह भी प्रतीत होता है कि अब तो मनुष्य जाति ने इतना ज्ञान और बुद्धि विकसित कर ली है कि उसके नेता अधिक संख्या में इस नये प्रकार के अनुशासन की संभावनाओं को समझ सकते हैं।

1.8.2 हंगरी का अहिंसात्मक प्रतिरोध

रिचर्ड बी.ग्रेग की पूर्वोक्त पुस्तक में विविध देशों के कुछ अहिंसात्मक प्रतिरोधों के उदाहरण दिये गये हैं, उनमें से एक हंगरी का है, जो अब से लगभग सौ वर्ष पहले हुआ था। संक्षेप में वह इस प्रकार है — सम्राट् फ्रांज जोसेफ आस्ट्रिया और हंगरी दोनों देशों के संघ सम्बन्धी शर्तों के विरुद्ध, हंगरी को आस्ट्रियन सत्ता के अधीन करने का प्रयत्न कर रहा था। हंगरी के नर्म-दलीय लोग निःसहाय से हो रहे थे क्योंकि उनमें लड़ने की शक्ति न थी। किन्तु वहां के फ्रांसिस डीक नामक एक केथलिक भूमिपति ने लोगों को अन्याय न सहने और उसका अहिंसक प्रतिकार करने के लिए आह्वान किया। उसने हंगरी द्वारा अपने स्वतन्त्र शिक्षण, कृषि और उद्योग- धंधे चालू करने, आस्ट्रियन सरकार को मानने से हर प्रकार से इनकार करने और आस्ट्रियन वस्तुओं के बहिष्कार करने की योजना प्रारम्भ की। उसने लोगों को सावधान किया कि वे किसी भी प्रकार बल-प्रयोग या हिंसा न करें, न कानून के दायरे को छोड़ें।

हंगरी के लोगों ने उसकी सलाह पर अमल किया। जब आस्ट्रिया के कर वसूल करने वाले कर्मचारी आये तो उन्होंने न उनको मारा और न चिढ़ाया। उन्होंने केवल टैक्स नहीं दिया। इस पर आस्ट्रियन पुलिस ने उनका सामान छीन लिया, किन्तु पुलिस को हङ्ग.री में कोई भी ऐसा आदमी न मिला जो उस सामान को नीलाम करदे। जब इस काम के लिए आस्ट्रिया से आदमी लाये गया तो हंगरी में कोई बोली लगाने वाला भी न मिला। उसके लिए आस्ट्रिया के ही आदमियों की जरूरत हुई। सरकार को शीघ्र ही अनुभव हुआ कि माल की कुर्की और नीलामी में ही टैक्स की रकम से अधिक खर्च पड़ जाता है। इधर हंगरी वालों ने आस्ट्रिया के माल का बहिष्कार कर दिया। आस्ट्रियन सरकार ने उनके इस काम को गैर -कानूनी घोषित किया, पर इसका असर न हुआ। व्यक्ति कानून भंग करते रहे, जेलें ठसाठस भर गयीं। अब आस्ट्रिया ने मेल की नीति पर अमल प्रारम्भ किया। कैदी छोड़ दिये गये और आंशिक स्वशासन दिया गया। किन्तु हंगरी ने अपने सम्पूर्ण अधिकारों की मांग की। इस पर सम्राट ने अनिवार्य सैनिक भर्ती का आदेश जारी किया। हंगरी वालों ने इसे अमान्य किया। आखिर 18 फरवरी 1867 को सम्राट झुक गया और उसने हंगरी को उसका अलग शासन-विधान प्रदान किया।

श्री ग्रेग ने लिखा है—'इस लड़ाई में थोड़ी सी त्रुटि थी; क्योंकि हंगरी के लोंगों के हृदय में हिंसा का कुछ भाव था। फिर भी अहिंसात्मक प्रतिरोध की शक्ति का यह अच्छा उदाहरण है, चाहे अहिंसा को समझने और प्रयोग करने में अपूर्णता रही हो।'

1.8.3 भारत में बिजौलिया का सत्याग्रह

गांधीजी द्वारा चलाये जाने वाले आन्दोलनों का उल्लेख आगे किया जाएगा। यहां हम केवल बिजौलिया (मेवाड़) के सत्याग्रह की ही बात करेंगे, जो भारत के देशी राज्यों और खासकर राजस्थान के जन-जागरण में अपना विशेष स्थान रखता है। यद्यपि इतिहास-पुस्तकों में इसकी चर्चा बहुत कम होने से लोगों को इसकी जानकारी प्राय: नहीं ही है। यह इस युग की सम्भवत: पहली महत्त्वपूर्ण शान्तिमय लड़ाई थी। इसका नेतृत्व श्री विजयसिंह 'पथिक' ने किया था।

सन् 1916-17 में बिजौलिया की जमीन की पैदावार में से ठिकाने वालों की मांग बहुत अधिक होने के कारण लोगों ने जमीन पड़ती रखने का विचार किया। इस विषय में बिजौलिया पट्टे के कुछ पंचों ने श्री 'पथिक' की सलाह ली। जमीन पड़ती रखने में ठिकाने और प्रजा दोनों की हानि को ध्यान में रख कर पथिक ने उन्हें वैध उपायों से काम लेने का परामर्श दिया। अब लोगों ने काफी प्रमाणों के साथ एक दरखास्त राज्य के महकमा-खास में दी और गैर-कानूनी बेगार व लागतें देना बन्द कर दिया, इस पर ठिकाने ने भयंकर दमन किया। सैकड़ों किसान पीटे गये, काठ (खोडे) में दिये गये, बिना भोजन और वस्त्र दिये सात-आठ माह कैद में रखे गये। तो भी गरीब कृषक शान्त रहे और अपनी शिकायतें राज्य-सरकार तक पहुंचाते रहे। इसके बाद बिजौलिया के अधिकारियों ने जनता की रक्षा न करने और चोरी आदि की रिपोर्ट न लेने का ढ़ंग इख्तियार किया। कई गांव लुटे, चोरियों की संख्या बढ़ गयी। तब लोगों को अपनी रक्षा के लिए स्वयं पहरे का प्रबन्ध करना पड़ा। श्री पथिक ने उन्हें ग्राम-पंचायतों द्वारा जुर्मों की संख्या रोकने, आपसी झगड़े न बढ़ने देने, शिक्षा-प्रचार करने, मादक द्रव्य, मांस, विदेशी वस्त्र और अपव्यय रोकने की सलाह दी। लोगों ने क्रमश: इस पर अमल किया और प्रत्येक क्षेत्र में अच्छी सफलता प्राप्त की।

बिजौलिया की इस प्रगति की गांधीजी ने अपने सचिव महादेव देसाई के द्वारा जांच करायी। जब उन्हें मालूम हुआ कि किसानों के कष्टों की बात सच है और उनका आन्दोलन सत्याग्रह के नियमों के अनुसार है तो उन्होंने इस आन्दोलन का समर्थन किया और तत्कालीन दीवान श्री रमाकान्त मालवीय को पत्र लिखवाया।

यह आन्दोलन चार साल तक चला। महिलाओं ने भी इसमें भाग लिया। अधिकरियों ने दमन-चक्र चलाने में कुछ कमी न की। आखिर उन्हें झुकना पड़ा। सन् 1922 में बिजौलिया के जागीरदारों को किसानों से समझौता करना पड़ा। बेगार और बेजा लागतें उठानी पड़ी, किसानों की पंचायतें स्वीकार करनी पड़ी और उन्हें किसानों को मामले तय करने का अधिकार देना पड़ा। जमीन का लगान कायम करने के लिए स्थायी बन्दोबस्त करने की बात तय हुई। आन्दोलन के समय रचनात्मक कार्य करने से किसानों के सामाजिक, आर्थिक आदि विविध क्षेत्रों में जो स्वावलम्बन की भावना पैदा हुई, वह उन्हें अतिरिक्त लाभ मिला।

1.9 गांधीजी द्वारा अहिंसात्मक प्रतिरोध

अहिंसात्मक प्रतिरोधों की ओर जनता का विशेष ध्यान आकर्षित करने का मुख्य श्रेय गांधीजी को है। उन्होंने गम्भीरता पूर्वक इस समस्या पर चिंतन-मनन किया। जैसे-कुछ साथी और साधन उन्हें मिल सकें उनके ही बल पर उन्होंने इसके प्रयोग किये। उनके प्रयोगों में जो सफलता मिली, वह अनेक लोगों के लिए आश्चर्यजनक रही और उन्हें इसमें बहुत सम्भावनाएं प्रतीत हुईं। इससे अन्य देशों का इस ओर आकर्षण बढ़ा।

1.9.1 दक्षिण अफ्रीका में

गांधीजी का राजनैतिक बुराईयों को दूर करने के लिए अहिंसात्मक प्रतिरोध करने का पहला प्रयोग दक्षिण अफ्रीका में ही हुआ। यह आठ वर्ष तक चला। वहां सन् 1906 में ट्रांसवाल की सरकार ने विधान–सभा में ऐसे कानून का मसविदा पेश किया था जिसके द्वारा भारतीयों से जरायम–पेशा लोगों की तरह अंगूठों के निशान लगवा कर उनकी रजिस्ट्री होती और यदि कोई भारतीय रजिस्ट्री न कराता तो उसका वहां से निर्वासन किया जाता। यदि कोई भारतीय वहां के पुलिस अधिकारी को रजिस्ट्री की सनद नहीं दिखा सकता तो उस पर जुर्माना होता। गांधीजी के नेतृत्व में पहले वहां इसके विरोध में सभाएं हुईं, सरकार से उपर्युक्त कानून न बनाने का निवेदन किया गया। सरकार ने भारतीयों की मांग स्वीकार न की और कानून बना डाला। इसपर सविनय कानून–भंग हुआ। गांधीजी तथा दूसरे अनेक व्यक्ति जेल गये। तब प्रधानमंत्री जनरल स्मट्स ने कहा कि यदि भारतीय स्वेच्छा से रजिस्ट्री करा लेंगे तो कानून रद्द कर दिया जाएगा। भारतीयों द्वारा इस समझौते का पालन कर देने पर उन्होंने अपना वादा पूरा न किया तथा कई अन्य अनुचित बातें होने दीं। ट्रांसवाल की सर्वोच्च अदालत के एक यूरोपीय जज ने तो एक ऐसा अदालती फैसला भी कर डाला जिसके अनुसार समस्त हिन्दू और मुस्लिम विवाह नाजायज हो गये और इस प्रकार सब हिन्दुस्तानी बच्चे अवैध माने जाने लगे और सम्पत्ति के उत्तराधिकार से वंचित करार दिये गये। अस्तु, भारतीयों ने फिर अहिंसात्मक आन्दोलन आरम्भ किया। महिलाओं ने भी इसमें सक्रिय भाग लिया। कैद, जुर्माना, मारपीट तथा अन्य प्रताड़नाओं के बावजूद आन्दोलन चलता रहा और अहिंसक बना रहा। जनरल स्मट्स ने कूटनीति का सहारा लिया पर आखिर उन्होंने झुक जाना जरूरी समझा। भारतीयों की बड़ी–बड़ी मांगें मंजूर की गयीं — रजिस्ट्री–कानून का रद्द होना, तीन पौंड प्रति व्यक्ति कर का हटाया जाना, भारतीय विवाहों का जायज होना आदि।

जागृत लोकमत का सामना कोई भी सरकार बहुत समय तक नहीं कर सकती। गांधीजी ने अधिकार मद से उन्मत्त सरकार को होश में लाने तथा दूसरा. का पथ प्रदर्शन करने में जितनी भी सफलता प्राप्त की है, वह अहिंसात्मक प्रतिरोध के लिए कुछ कम गौरव की बात नहीं।

1.9.2 भारत में चम्पारण का सत्याग्रह

इसके बाद भारत में तो गांधीजी ने अहिंसात्मक प्रतिरोध के कई प्रयोग कर दिखाये। उदाहरण के लिए सन् 1917 के चम्पारण (बिहार) सत्याग्रह का उद्देश्य आर्थिक था। चम्पारण जिले में किसानों को अपनी जमीन के 15 प्रतिशत भाग में नील की खेती, अंग्रेजों के लिए जबरन करनी पड़ती थी। उन्हें कई अनुचित लागें भी देनी होती थीं। जब गांधीजी से इस विषय में कहा गया तो इन्होंने इसकी प्रामाणिक जांच करने का विचार किया। इनकी जांच की कार्यवाई से अंग्रेजों की नाराजगी स्वाभाविक थी। उन्होंने मजिस्ट्रेट से गांधीजी के नाम नोटिस जारी करा दिया कि वे तुरंत जिले से बाहर चले जाएं। पर इससे गांधीजी डरने या घबराने वाले न थे। इन्होंने अपने कर्तव्य पर डटे रहने की, और यदि आवश्यक हो तो इसके लिए सरकारी आज्ञा के भंग करने के दंड को सहर्ष सहने की अपनी पूरी तैयारी सूचित कर दी। अस्तु, इन्होंने जांच का काम जारी रखा। जांच गुप्त रूप से नहीं, खुले आम होती थी। ठीक और सही बात जानने के लिए गवाहों से सवाल भी किये जाते थे। कार्यवाई के समय सरकार द्वारा भेजे हुए पुलिस–अफसर भी मौजूद रहते थे, जो वहां होने वाले कार्य के नोट लेते रहते थे। गांधीजी पर मुकदमा चला तो इन्होंने स्पष्ट कह दिया कि मेरे सामने दो विकल्प हैं–मैं कानून मान कर यहां से चला जाऊं या अपने हृदय की प्रेरणा और सेवाधर्म को मानूं। मैंने दूसरा विकल्प स्वीकार किया है, जब तक सरकार मुझे यहां से हटा न दे।

अदालती फैसला होने से पूर्व ही प्रान्त के शासक ने आज्ञा दी कि गांधीजी को जांच जारी रखने की इजाजत दी जाए। बाद में तो एक सरकारी जांच कमीशन ही नियुक्त कर दिया गया, जिसके एक सदस्य गांधी जी भी बनाये गये। कमीशन की सर्वसम्मति से यह रिपोर्ट रही कि किसानों से जबरन नील की खेती कराना अन्यायपूर्ण है तथा बड़े जमींदारों की लागें भी अनुचित हैं। इस पर कानून का संशोधन हुआ। इससे लोगों की सत्याग्रह के प्रति श्रद्धा बढ़ने लगी, जो सामाजिक जीवन के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण थी।

1.9.3 वायकोम का सत्याग्रह

त्रावणकोर राज्य के वायकोम ग्राम में मंदिर के पास से जाती हुई सड़क पर हरिजनों को नहीं जाने दिया जाता था। यहां पर सत्याग्रह गांधीजी के परामर्श से हुआ, बाद में गांधीजी स्वयं भी वहां पहुंचे। हरिजनों के साथ सत्याग्रहियों ने इस अवसर पर तरह–तरह के कष्ट सहे, गिरफ्तारियां हुईं, पर सेवकों का तांता लगा रहा। आखिर, सुधारकों के कष्ट–सहन और अहिंसा ने ब्राह्मणों को झुका दिया। सोलह महीने बाद सन् 1925 में उन्होंने उक्त सड़क पर हरिजनों को जाने–आने की अनुमति प्रदान की। इस प्रकार सामाजिक न्याय की प्राप्ति में सफलता मिली।

1.9.4 वारडोली सत्याग्रह

वारडोली का सत्याग्रह (सन् 1928) प्रसिद्ध है। वारडोली बम्बई प्रान्त का एक ताल्लुका था। यहां किसानों पर लगान बहुत बढ़ा दिया गया था। उनकी प्रार्थना पर कुछ ध्यान नहीं दिया गया। इस पर किसानों ने सरकार को सूचना देकर लगान देना बन्द कर दिया। इस आन्दोलन का नेतृत्व, गांधीजी की सलाह से श्री वल्लभभाई पटेल ने किया। सरकार ने तरह-तरह की नीति- अनीति से काम लिया। किसानों को कर देने के लिए तैयार करने के लिए उनमें से कुछ को प्रलोभन दिया, कुछ पर जुर्माना किया, कहीं कोड़ों और सजाओं से काम लिया, फूट डालने के भी प्रयत्न किये, बहुत से किसानों की जमीन तथा सामान ही नीलाम कर दिया गया। पर किसानों ने दृढ़ता-पूर्वक अहिंसक बने रह कर अपना कर्त्तव्य पालन किया और सरकार की चालें न चलने दीं। ज्यों-ज्यों इस आन्दोलन का समाचार-पत्रों और ट्रैक्टों या पत्रकों द्वारा प्रकाशन हुआ देश भर की सहानुभूति वारडोली के किसानों के प्रति और बढ़ गयी। प्रान्तीय विधानसभा में इस विषय पर बहस हुई और कई सदस्यों ने सरकारी नीति के विरोध में इस्तीफा दिया। ब्रिटिश पार्लियामेंट ने भी इस विषय पर विचार किया। आखिर, साढ़े पांच महीने बाद सरकार को किसानों की लगभग सभी मांगें मंजूर करनी पड़ीं।

1.9.5 अन्य सत्याग्रह

गांधीजी के आदेश या स्वीकृति के अनुसार संगठित अहिंसात्मक प्रतिरोध के कुछ अन्य उदाहरण हैं — अहमदाबाद की मिल-मजदूर हड़ताल (1817), खेड़ा का कर सम्बंधी सत्याग्रह (1926-27), बोरसद का कर सम्बंधी सत्याग्रह (1923), नागपुर का राष्ट्रीय झंडा सत्याग्रह आदि। 1921-22 के अखिल भारतीय असहयोग आन्दोलन की विशेषता, उसकी गहराई में न माप कर उसके विस्तार में समझनी चाहिए। इतने बड़े आकार और इतनी बड़ी जनसंख्या में आजादी हासिल करने की भावना गांव-गांव और घर-घर में पहुंचाने की बात मामूली नहीं है। सन् 1930 का नमक सत्याग्रह अपने ढ़ंग की संसार की एक अद्‌भुत् घटना है। इस आन्दोलन के सिलसिले में कई प्रकार के अनुचित कानून तोड़े गये। कहीं जंगल सत्याग्रह, कहीं जप्त पुस्तकों की बिक्री, कहीं मादक-द्रव्य पर और कहीं अंग्रेजी माल पर पिकेटिंग (धरना देना) करके आदमी जेल जाते रहे। महिलाओं ने भी सक्रिय भाग लिया। बालकों की वानर-सेनाएं बनीं। कुल मिलाकर लगभग एक लाख आदमी जेल गये। आखिर, सरकार और कांग्रेस में समझौता हुआ।

1.10 भारत का स्वाधीनता-आन्दोलन और अहिंसा

गांधीजी द्वारा या उनके परामर्श से संचालित उपर्युक्त आन्दोलन कुछ अलग-अलग बिखरी हुई घटनाओं के रूप में भी अपना महत्त्व रखते हैं। ये वास्तव में देश की सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक — सभी प्रकार के स्वाधीनता-आन्दोलन रूपी श्रृंखला की कड़ी हैं। आजकल राजनीति का राष्ट्रीय जीवन पर बहुत अधिक प्रभाव रहता है, इसलिए उस ओर जनता का ध्यान स्वभावत: अधिक रहा। भारत ने जो स्वाधीनता प्राप्त की उसमें यद्यपि अन्य सहायक कारणों के होने से इन्कार नहीं किया जा सकता, उसमें अहिंसा का यथेष्ठ भाग मानना ही होगा। गांधीजी ने भारतवासियों में अंग्रेजों से घोर यातनाएं मिलने पर भी, हिंसा की प्रवृत्ति उभरने न दी, उसे बराबर नियंत्रित किया। गांधीजी का लक्ष्य यहां से अंग्रेजों को हटाना न होकर अंग्रेजियत को, उनके शासन को हटाना था। इसलिए भारत का अंग्रेजों के प्रति दुर्भाव न हुआ, स्वाधीन होने पर भारत और इंग्लैंड का सम्बन्ध बना रहा, एक-दूसरे के सहयोग के इच्छुक रहे, यह अहिंसा का ही चमत्कार है।

1.11 सारांश

अस्तु अहिंसा की शक्ति अद्‌भुत है एवं प्रतिरोधक क्षमता भी अपूर्व है।

1.12 अभ्यास प्रश्नावली

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. क्या प्राकृतिक शक्तियों से अहिंसा की शक्ति अधिक आश्चर्यकारी है?
2. ''अहिंसा का अर्थ अत्याचारी की इच्छा के सामने चुपचाप झुक जाना नहीं है''-स्पष्ट करें।
3. अहिंसात्मक प्रतिरोध का अर्थ स्पष्ट करें।

4. अहिंसक प्रतिरोधी के समक्ष आक्रामक कमजोर क्यों पड़ जाता है?

5. अहिंसात्मक प्रतिरोध विरोधी की पराजय नहीं, हृदय परिवर्तन है, संक्षेप में स्पष्ट करें।

6. अहिंसक प्रतिरोधियों के नियमों का उल्लेख कीजिए।

7. वारडोली सत्याग्रह के बारे में 100 शब्दों में लिखिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. ''मनुष्य की बुद्धि ने संसार के प्रचंड अस्त्र-शस्त्र बनाये हैं, उनसे भी प्रचंड अहिंसा की शक्ति है'' यह कथन किसका है?

(क) महात्मा गांधी (ख) विनोबा भावे (ग) जयप्रकाश नारायण (घ) राममनोहर लोहिया ( )

2. ''हिंसा मानवजाति के विरूद्ध एक अक्षम्य अपराध है'' यह कथन है-

(क) विनोबा (ख) गांधीजी (ग) जयप्रकाश नारायण (घ) आचार्य तुलसी ( )

3. अहिंसात्मक प्रतिरोध पर लिखी पुस्तक ''अहिंसा की शक्ति'' के लेखक कौन हैं-

(क) गांधी (ख) रिचर्ड बी. ग्रेग (ग) आचार्य तुलसी (घ) आइन्स्टीन ( )

4. अहिंसात्मक प्रतिरोध में विरोधी की होती है/ का होता है-

(क) पराजय (ख) जीत (ग) हृदय परिवर्तन (घ) नाश ( )

5. अहिंसक प्रतिरोधी को कहा जाता है-

(क) शांति सैनिक (ख) सैनिक (ग) स्वयं सेवक (घ) कार्यकर्त्ता ( )

6. सामूहिक अहिंसात्मक प्रतिरोध के मनोवैज्ञानिक पहलू पर रिचर्ड बी. ग्रेग की पुस्तक का नाम है-

(क) अहिंसा की शक्ति (ख) अहिंसा की क्रांति

(ग) अहिंसक प्रतिरोध (घ) अहिंसा की मशाल ( )

7. भय के साथ कौनसी स्वाभाविक वृत्ति रहती है-

(क) क्रोध (ख) घृणा (ग) पलायन (घ) रोना ( )

8. बिजौलिया सत्याग्रह का नेतृत्व किसने किया?

9. गांधीजी द्वारा अहिंसात्मक प्रतिरोध का प्रथम प्रयोग कहां हुआ?

10. चम्पारण सत्याग्रह का क्या उद्देश्य था?

11. बारडोली सत्याग्रह कब हुआ?

12. राष्ट्रीय झण्डा सत्याग्रह कहां हुआ?

13. नमक सत्याग्रह कब हुआ?

14. वायकोम सत्याग्रह किस अन्याय के विरोध में था?

निबन्धात्मक प्रश्न

1. स्पष्ट कीजिए- अहिंसा में असीम शक्ति है?

2. अहिंसात्मक प्रतिरोध को स्पष्ट करते हुए अहिंसक प्रतिरोध की विशेषताएं व अहिंसक प्रतिरोधी के गुणों का उल्लेख करें।

3. अहिंसा अपने विरोधी पर कैसे प्रभाव डालती है?- स्पष्ट करें।

4. अहिंसक प्रतिरोधियों के कार्यों का उल्लेख करते हुए अहिंसक प्रतिरोध का कोई एक उदाहरण प्रस्तुत कीजिए।

5. हिंसा व अहिंसा के कार्य में भेद को स्पष्ट कीजिए।

इकाई–2 : आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं पर्यावरणीय क्षेत्र में अहिंसा का व्यवहार

संरचना

2.0 प्रस्तावना
2.1 उद्देश्य
2.2 विषय प्रवेश
2.3 आर्थिक क्षेत्र में अहिंसा का व्यवहार
2.3.1 अर्थशास्त्र की प्रकृति
2.3.2 उत्पादन
2.3.3 उपभोग
2.3.4 निर्बाध विकास
2.4 राजनैतिक क्षेत्र में अहिंसा का व्यवहार
2.4.1 राज्य की प्रकृति
2.4.2 वैधानिकता बनाम लोकतांत्रिकता
2.4.3 शासित एवं शासक
2.4.4 हिंसा किसी भी स्थिति में नैतिक नहीं
2.4.5 तात्त्विक एक्यता
2.4.6 लोकतंत्र के सिद्धान्त–अहिंसा की विधायी प्रवृत्ति
2.4.7 राज्य द्वारा बल के रुप में अहिंसा का स्वीकरण
2.4.8 आक्रमण और अहिंसा
2.5 सामाजिक क्षेत्र में अहिंसा का व्यवहार
2.5.1 समाज का आधार–अहिंसा
2.5.2 शुद्ध साधनों को स्वीकृति
2.5.3 भय केन्द्रित समाज बनाम समतामूलक समाज
2.5.4 शक्ति संतुलन और अहिंसा
2.5.5 पदार्थ पर नहीं इच्छा पर नियंत्रण आवश्यक
2.5.6 समाज में अहिंसा के प्रयोग के सूत्र
2.5.6.1 सापेक्षता
2.5.6.2 सहअस्तित्व
2.6 धार्मिक क्षेत्र में अहिसा का व्यवहार
2.6.1 धर्म का स्वरुप
2.6.2 धर्म–सापेक्ष सत्य का प्रतीक
2.6.3 अहिंसा प्रयोग के सूत्र
2.7 पर्यावरण के क्षेत्र में अहिंसा का व्यवहार
2.7.1 मानव अस्तित्व–प्रकृति और व्यक्ति का तादात्म्य
2.7.1.1 वैदिक साहित्य
2.7.1.2 बौद्ध दर्शन
2.7.1.3 जैन दर्शन
2.7.1.4 गांधी साहित्य

2.8 ग्राम स्वराज्य का चिंतन और अहिंसा
2.9 उद्योगवाद
2.10 वैकल्पिक चिकित्सा
2.11 सारांश
2.12 अभ्यास प्रश्नावली

2.0 प्रस्तावना

प्रथम इकाई में आपने अहिंसा की शक्ति एवं अहिंसात्मक प्रतिरोध के बारे में जाना। अहिंसा की शक्ति को जानकर ही उस शक्ति का प्रयोग जीवन व जगत् के विभिन्न क्षेत्रों में किया जा सकता है। इस इकाई में हम आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं पर्यावरण के क्षेत्र में अहिंसा के व्यवहार की विस्तार से चर्चा करेंगे। यह चर्चा आपको जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में अहिंसा के प्रयोग को सफल करने में सहायक होगी।

2.1 उद्देश्य

1. जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में अहिंसा के व्यवहार को जानना।
2. आर्थिक क्षेत्र के विभिन्न क्षेत्रों में अहिंसा के व्यवहार का ज्ञान।
3. समतामूलक समाज की अवधारणा का ज्ञान।
4. धार्मिक सहिष्णुता के सूत्रों का ज्ञान।
5. पर्यावरण के क्षेत्र में विभिन्न धर्मों के अहिंसात्मक व्यवहार को जानना।

2.2 विषय प्रवेश

अहिंसा मानव जाति का धर्म है। यह व्यक्तिगत धर्म नहीं है बल्कि व्यक्ति और समाज के लिए आध्यात्मिक एवं राजनीतिक आचरण का पथ है। इसलिए यह जितनी प्रासंगिक ऋषि मुनियों के लिए रही है उतनी ही उपयोगी समाज के लिए भी रही है। अहिंसा का विचार मानव मन में उत्पन्न होता है किन्तु इसका प्रकटीकरण विभिन्न मानव व्यवहारों में तथा जीवन के हर क्षेत्र में होता है। अप्रवृत्तिमूलक अहिंसा के स्थान पर जीवनोन्मुख विकासशील अहिंसा में विश्वास अहिंसा के व्यावहारिक पथ में विश्वास है।

अहिंसा का व्यवहार व्यक्ति, समूह तथा संस्था किसी के द्वारा भी हो सकता है। सुविधा की दृष्टि से इसे तीन श्रेणियों में बांटा जा सकता है–

1. अहिंसक भावात्मक मूल्यों के अनुरुप आचरण
2. प्रतिकारात्मक व्यवहार और
3. रचनात्मक कार्य

प्रथम श्रेणी के अन्तर्गत सहयोग, करुणा, दान, सेवा, संयम आदि को लिया जाता है जो सामाजिक रुप से सबके लिए आवश्यक है। प्रतिकारात्मक कार्य में अहिंसक विरोध आता है जिसके द्वारा व्यक्ति अन्याय, अत्याचार, उत्पीड़न, शोषण आदि के विरुद्ध आवाज उठा सकता है। अहिंसा का यह व्यवहार परिस्थितिजन्य है, जीवन की सुखद स्थिति नहीं। रचनात्मक कार्य समूह का हृदय जीतकर उनका समर्थन प्राप्त करने के लिए है जिससे अहिंसक समाज व्यवस्था के निर्माण में सहयोग मिलता है।

इस सामान्य परिचय के बाद अब हम विभिन्न क्षेत्रों में अहिंसा के व्यवहार पर विस्तार से चर्चा करेंगे।

2.3 आर्थिक क्षेत्र में अहिंसा का व्यवहार

2.3.1 अर्थशास्त्र की प्रकृति

आधुनिक अर्थशास्त्र व्यक्ति को इच्छाओं एवं लिप्साओं से संचालित होने वाला एक सीमित, भौतिक और यांत्रिक प्राणी मानता है। वस्तुओं के उपभोग से होने वाली इच्छाओं/लिप्साओं की दृष्टि उसे खुशी प्रदान करती है और एक 'विवेकी व्यक्ति' (तथाकथित) सदैव इन्हें बढ़ाने की कोशिश में लगा रहता है। इस प्रकार यहां व्यक्ति को असीमित इच्छाओं की पूर्ति का एक उपभोक्ता मात्र समझा जाता है तथा अर्थशास्त्री का सामान्य उद्देश्य भौतिकवाद का अनुसरण करते हुए संपत्ति में वृद्धि और मानव के कल्याण एवं सुख में

वृद्धि हेतु वस्तुओं एवं सेवाओं की उपलब्धता तथा तीव्र आर्थिक वृद्धि दर की प्राप्ति मात्र रह जाता है। अतः असीमित तकनीकी प्रगति को उत्पादन वृद्धि हेतु प्रयुक्त किया जाता है क्योंकि अर्थशास्त्र में अधिक हमेशा 'अच्छा' होता है।

अर्थशास्त्र में अहिंसा का प्रयोग आर्थिक प्रश्नों की मात्र शास्त्रीय व्याख्या मात्र नहीं करता है। यह दृष्टिकोण जीवन को समग्र दृष्टि से देखता है तथा नैतिक मूल्यों को आर्थिक क्षेत्र में लागू करने का प्रयास करता है। इस भूमिका के साथ हम आर्थिक क्षेत्र में अहिंसा के व्यवहार की चर्चा करेंगे।

अर्थशास्त्र का चाणक्य का सूत्र रहा है—सुखस्य मूलम् धर्मम्, धर्मस्य मूलम् अर्थः। अर्थ का महत्व तो निर्विवाद है किन्तु अर्थ के उपार्जन के स्वरुप और उसके उपभोग के दिशा निर्देशों की अनदेखी करके अर्थ के महत्व की समीक्षा उचित नहीं कही जा सकती। यहीं अर्थशास्त्र में अहिंसा के व्यवहार का प्रवेश हो जाता है। प्रायः सभी धर्मों ने व्यक्तिगत अर्थ संग्रह को परिग्रह माना है तथा कर्मबंध का हेतु भी। महावीर दर्शन में अर्थ के उपार्जन, उपभोग एवं वितरण के संदर्भ में साधन और साध्य—दोनों को महत्वपूर्ण माना गया है।

2.3.2 उत्पादन

उत्पादन की प्राथमिकताओं के संदर्भ में जैनदर्शन में तीन मुख्य बाते हैं जिन्हें उत्पादन की प्राथमिकताओं के अहिंसक कारक घटक भी कहा जा सकता है—

1. अपरिग्रह और व्यक्तिगत उपभोग के सीमांकन द्वारा उत्पादन के संसाधनों को आवश्यक वस्तुओं के उत्पादन के लिए मुक्त करना।
2. किन वस्तुओं का उत्पादन न किया जाये इसका दिशा निर्देश यथा—'अहिंसाप्यणे, अर्थात् हिंसक शस्त्रों का निर्माण न करना आदि।
3. उत्पादन में साधन शुद्धि निर्देशों में 'भत्तपान विच्छेद,—आजीविका का विच्छेद न करना तथा किसी प्रकार का शोषण न करना।

मानवीय इच्छाएं आकाश की तरह अनंत हैं और इच्छाओं के अनुपात में संसाधन अत्यंत सीमित हैं। वैयक्तिक क्षमताएं तथा उसी के अनुसार आय के अनुपात में भी विषमता है। इस वैषम्य के बावजूद अहिंसक अर्थशास्त्र मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति को आवश्यक मानता है तथा आजीविका के अधिकार को भी मूलभूत अधिकार के समान स्वीकार करता है। उत्पादन की प्राथमिकताओं में ऐसे उत्पादन को स्वीकार नहीं किया जा सकता जो व्यापक हिंसा या अधिक हिंसा का निमित्त बन सकता हो। इस संदर्भ में पर्यावरण संतुलन को भी आवश्यक माना जा सकता है। जैन दर्शन में वनों की कटाई, भूमि का उत्खनन आदि व्यावसायिक कार्यों का निषेध इस संदर्भ में उल्लेखनीय है।

2.3.3 उपभोग

अर्थ का सात्विक अर्जन और उसका संयमित उपभोग अर्थशास्त्र में अहिंसक व्यवहार का सुदृढ़ आधार है। मुख्य भारतीय दर्शन इस विचारधारा के पोषक हैं। वे लोभ,लालसा अथवा तृष्णा को अंधकूप एवं संतोष को शांति एवं सुख का पर्याय मानते हैं।

परिग्रह, संग्रह, अधिकार एवं उपभोग मनुष्य की प्रवृत्ति है। अर्थ के उपार्जन का हेतु उपभोग है ओर उपार्जन की प्रेरणा भी उपभोग। मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु उपभोग को धर्मों द्वारा नकारा नहीं गया है। किन्तु भोग— उपभोग के सीमांकन को महत्व दिया गया है। उपभोग का संयम भौतिक विकास की प्रचलित अवधारणा का अपवाद माना जा सकता है। किन्तु यहां यह विमर्शनीय है कि क्या उपभोग का संयम व्यक्तिगत एवं सामुदायिक हित चिंतन के उच्चतर प्रतिमान दर्शाते हैं? यदि इस प्रश्न का उत्तर 'हां' में है तो हमें उपभोग के संयम के सिद्धान्त को सर्वकालिक मानने में संकोच नहीं होना चाहिए।

उपभोग सामान्यतया उपार्जन से कम ही रहता है। उपार्जन के इस आधिक्य का उपयोग व्यक्ति अपनी संपदा के संवर्द्धन के लिए करता है। यह संवर्द्धित संपदा भविष्य में पूंजी निवेश की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है तथा स्वयं के भविष्य एवं भावी पीढ़ी की सुरक्षा की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। यह सूत्र प्रकृति प्रदत्त पदार्थों पर भी समान रुप से लागू होता है। अतः भावी पीढ़ियों को भौतिक संपदा तथा प्रकृति प्रदत्त पदार्थों को एक व्यावहारिक अनुपात में उपलब्ध करवाने की दृष्टि से भी उपभोग का परिसीमन आवश्यक भी है और मजबूरी भी।

2.3.4 निर्बाध विकास

अर्थशास्त्रियों के अनुसार विकास व्यक्ति एवं समुदाय के जीवन की स्थिति में उर्ध्वारोहण है। यह उर्ध्वारोहण उसकी सुख–समुद्धि एवं विचारों के विकास दोनों से ही संभव है। भौतिक दृष्टि से विकास उत्पादन के संसाधनों के संवर्द्धन और सामर्थ्य की दृष्टि का पर्याय है। विभिन्नता विचारधाराओं वाले अर्थशास्त्रियों में भी उत्पादन के सामर्थ्य के संवर्द्धन की अवधारणा मान्य रही है।

निर्बाध विकास परिवर्तन का वह पथ है जिसमें संसाधनों के दोहन और संवर्द्धन, पूंजीनिवेश, तकनीकी विकास और संस्थागत बदलाव मनुष्य का वर्तमान एवं भविष्य की इच्छाओं और आकांक्षाओं का समन्वय कर सके। सर्वांगीण विकास के इस दृष्टिकोण में अर्थशास्त्र की पूर्ति का सिद्धान्त मात्र ही शामिल नहीं है, समानता और सामुदायिक विकास में उत्पादन की प्राथमिकताएं, वितरण, उपभोग का न्यूनतम स्तर और उत्पादन एवं उपभोग की वस्तुओं का मूल्य भी सम्मिलित हो जाता है। विकास के इस दृष्टिकोण में अहिंसा की भूमिका भी समाहित हो जाती है क्योंकि निर्बाध विकास–जिसमें वर्तमान एवं भविष्य की पीढ़ियों के उत्पादन–सामर्थ्य एवं उपभोग के संयम का चिंतन भी निहित है पर्यावरण भी अनदेखा नहीं रहता।

वस्तुतः तो सर्वांगीण विकास की आज की अर्थशास्त्रीय अवधारणा भगवान महावीर के अहिंसा सिद्धान्त की ओर लौटती सी नजर आती है। उत्पादन की प्राथमिकताएं, प्रत्येक व्यक्ति के लिए उपभोग का एक न्यूनतम स्तर और उपभोग की सीमा–अहिंसा सिद्धान्त की परिधि के बाहर नहीं है।

2.4 राजनैतिक क्षेत्र में अहिंसा का व्यवहार

2.4.1 राज्य की प्रकृति

राज्य का मुख्य कर्त्तव्य ऐसे कार्यों का संचालन करना है जिनसे समाज में एक न्यायपूर्ण व्यवस्था सुचारु रह सके। इसलिए यह देखना उसके कार्य क्षेत्र में है कि किसी भी व्यक्ति के प्रति कोई अन्य व्यक्ति या तंत्र अन्याय न कर सके। राज्य स्वयं भी एक अन्यायी तंत्र में बदल सकता है, इसलिए राजनैतिक दर्शन में स्वयं राज्यतंत्र के अन्याय का विरोध कर सकने की भावना और व्यवस्था विकसित करने का आग्रह भी किया जाता है। राजनैतिक दर्शनों में यह विचार मान्यता प्राप्त है। इसका स्पष्ट निहितार्थ यही है कि व्यक्ति या समाज की संप्रभुता स्वयं उसी में निहित है और राज्य को उसका उपयोग करने का अधिकार तभी है जब वास्तविक संप्रभु वैसा चाहे। व्यक्ति, राज्य और समाज–तीनों के लिए यह समझना आवश्यक है कि वास्तविक संप्रभु कौन है? वास्तविक संप्रभु सत्य है, व्यक्ति एवं समाज उसकी अंतरात्मा है। अर्थात् राज्य व्यवस्था बाह्य नियमानुशासन है जिसे समय–समय पर सत्य अर्थात् अहिंसा एवं प्रेम की कसौटी पर परखते रहना आवश्यक हो जाता है।

2.4.2 वैधानिकता बनाम लोकतांत्रिकता

एक सभ्य समाज से सामान्य तौर पर यह अपेक्षा की जाती है कि उसका राजनैतिक व्यवहार सभ्य अर्थात् वैधानिक और लोकतांत्रिक हो। सभ्यता के विकास का एक तात्पर्य समाज में अहिंसामय आचरण का विकास भी है। राजनीतिक आचरण के क्षेत्र में वैधानिकता और लोकतांत्रिकता अथवा अहिंसक आचरण का भेद समझ लेना आवश्यक है। अहिंसा और लोकतंत्र तो सदैव एक ही सिक्के के दो पहलू हैं लेकिन वैधानिकता कई बार लोकतंत्र विरोधी हो जाती है क्योंकि बहुमत की ही नहीं एक भी व्यक्ति की आवाज को दबाने का प्रयत्न लोकतंत्र विरोधी प्रयत्न ही है। असहमति का अधिकार लोकतंत्र का एक बुनियादी गुण है, इसलिए इसे दबाने का प्रयत्न लोकतंत्र का असम्मान ही है।

2.4.3 शासित व शासक

सभ्य समाज के प्रसंग में हमें केवल शासित या सामान्यजन को ही नहीं शासक या सुविधा–संपन्न विशिष्ट वर्ग को भी ध्यान रखना आवश्यक है। यह विशिष्ट वर्ग अपने आचरण में किस सीमा तक लोकतांत्रिक या अहिंसक है? हिंसा का दायरा यदि शारीरिक सीमा तक ही है तो इस वर्ग के आचरण को अहिंसक ही मानना होगा क्योंकि यह वर्ग अपने स्वार्थों का पोषण बहुत सूक्ष्म तरीकों से करता है और यदि कभी हिंसा का प्रत्यक्ष प्रयोग आवश्यक होता है तो भी वह राज्य अथवा कानून के माध्यम से करता है। इस प्रकार इस वर्ग की हिंसा प्रायः वैधानिक या कानूनी हिंसा होती है। यह वर्ग हिंसा को केवल स्थूल अर्थों में ग्रहण करता है लेकिन हिंसा केवल दैहिक ही नहीं होती। बुनियादी अर्थ में तो वह हर भावना और चेष्टा हिंसा है जो मानवीय चेतना की सृजनात्मक संभावनाओं की अभिव्यक्ति और विकास का दमन करती है अथवा उसमें बाधा पहुंचाती है। अहिंसा की धारणा के समर्थक किसी भी प्रकार के

उत्पीड़न, दमन और शोषण को हिंसा की संज्ञा देते हैं। इसीलिए यदि कानून और सत्ता के विभिन्न प्रकार कथित अहिंसक आचरण की आड़ में किसी भी प्रकार का दमन, शोषण और उत्पीड़न बनाये रखते हैं तो उसे निश्चय ही सभ्य आचरण नहीं कहा जा सकता।

2.4.4 हिंसा किसी भी स्थिति में नैतिक नहीं

बहुधा यह प्रश्न उठता है कि सामाजिक उत्पीड़न, आर्थिक शोषण और राजनैतिक दमन से ग्रस्त समाज यदि अपने बचाव में हिंसा का सहारा लेता है, तो क्या उसे उचित कहा जाए? इसमें कोई संदेह नहीं कि हिंसा किसी भी स्तर पर स्वीकार्य नहीं हो सकती। यह एक दुष्चक्र है जिसकी भित्ति घृणा पर खड़ी है। इसलिए एक बार इस दुष्चक्र में फंस जाने पर इससे छुटकारा संभव नहीं है। अतः जहां तक संभव हो शोषित वर्ग का आचरण भी अहिंसक प्रणालियों पर आधारित होना चाहिए। बिना आक्रामक मनोवृत्ति एवं घृणा के अपनी सुरक्षार्थ, अपवाद स्वरुप (जब अहिंसक एवं लोकतांत्रिक रास्ते पूर्णतया बन्द हो जायें) सामाजिक जीवन में हिंसा शल्य चिकित्सक की हिंसा की तरह मान्य की जा सकती है। किन्तु यह विवेक अवश्य होना चाहिए कि हिंसा, हिंसा ही है। वह किसी भी परिस्थिति में अहिंसा नहीं हो सकती। हिंसा स्वयं में कोई अच्छी प्रवृत्ति नहीं है, वह अपने आप में अमानवीय प्रवृत्ति है, विनाश की ओर उन्मुख प्रवृत्ति है और यदि कभी हिंसा को स्वीकार किया भी जाता है तो जीवनदर्शन, जीवनशैली या प्रवृत्ति के रूप में नहीं बल्कि किसी हिंसा का ही विरोध करने के अंतिम अस्त्र के रुप में—यद्यपि इस पर पुनर्विचार की गुंजाइश सदैव बनी ही रहती है। क्रांति के प्रसंग में जब हिंसा के औचित्य की बात की जाती है तब भी यही कहा जाता है कि साध्य के आधार पर साधन की पवित्रता को आंकना चाहिए। इसी में क्या यह भाव निहत नहीं है कि हिंसा है तो अनुचित पर यदि किसी अच्छे उद्देश्य के लिए उसका उपयोग करना पड़े तो वैसा किया जा सकता है?

2.4.5 तात्त्विक एक्यता

जब हम कहते हैं कि मनुष्य विकास प्रक्रिया का एक स्तर है तब उसका एक अर्थ जीवन की विकास प्रक्रिया के अन्तर्गत चेतना का विकास होता है। आत्मरक्षा जीवन की सहज प्रवृत्ति है, किन्तु चेतना का विकास होने पर 'आत्म' का दायरा विस्तृत हो जाता है। अपने और शेष जीवन के बीच एक तात्त्विक ऐक्य का भाव विकसित हो जाता है। संतान, परिवार, जाति, वर्ग, धर्म, राष्ट्र आदि इसी आत्मविस्तार के क्षेत्र है, जिसे न समझ सकने पर आत्म का विस्तार और उसकी पहचान बाधित होती है। नस्लवाद, राष्ट्रवाद, साम्राज्यवाद आदि के कारण राजनैतिक परिदृश्य एवं सामाजिक जीवन में जो कुछ अमानवीय घटित होता है, वह इसी दृष्टि भ्रम का परिणाम है। यह दृष्टि भ्रम जब मनुष्य के भीतर छिपे पशु के साथ मिल जाता है तो राजनीतिक रंगमंच पर हिंसाकाण्ड घटित होने लगता है जो अनिवार्य रुपेण विनाशकारी है और इसलिए ये सभी विकास विरोधी है।

जाति, नस्ल, वर्ग, धर्म, राष्ट्र आदि के आधार पर सवयं को श्रेष्ठ समझना और दूसरे को ओछा या हीन मानना हिंसा के ही सूक्ष्म रुप है। इसलिए दैहिक बल प्रयोग ही नहीं राजनीतिक दमन, आर्थिक शोषण, सामाजिक उत्पीड़न भी हिंसा की अभिव्यक्तियां हैं। इस तर्क के आधार पर जाति, नस्ल, संप्रदाय, राष्ट्र आदि की अन्य से श्रेष्ठता की भावना कहीं गहरे में हिंसा की वृत्ति से प्रेरित है।

2.4.6 लोकतंत्र के सिद्धान्त—अहिंसा की विधायी प्रवृत्ति

हम उसी सामाजिक—आर्थिक—राजनैतिक व्यवस्था को उचित कह सकते हैं जो मनुष्य के अर्थात् चेतना के विकास के लिए उपयुक्त वातावरण की भूमिका निभा सके। दूसरे शब्दों में, इस पूरी व्यवस्था का आधार विधायी अर्थों में अहिंसा ही होना चाहिए। इसी विकास की प्रक्रिया में मनुष्य एक चेतन प्राणी होने के नाते अपने उत्तरदायित्व को निभा पाएगा। स्वतंत्रता, समानता, न्याय और बंधुत्व—लोकतंत्र के ये प्रेरक सिद्धान्त मूलतः अहिंसा के ही विभिन्न रुप हैं। यही कारण है कि लोकतंत्र, समाजवाद और अंतर्राष्ट्रीयता या वैश्विकता की धारणाएं बुनियादी रुप में एक दूसरे से जुड़ी धारणाएं हैं क्योंकि उन सबका मूल उत्स अहिंसा की विधायी प्रवृत्ति है।

2.4.7 राज्य द्वारा बल के रुप में अहिंसा का स्वीकरण

राजनीति विशेषकर अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में हर—एक राष्ट्र के हृदय में भय, शंका एवं हिंसा है और अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में इसका स्फुलिंग प्रलय का कारण हो सकता है। राष्ट्र के रुप में संगठित हिंसा कितनी भयंकर है, इसका अनुमान हम करते रहे हैं। हिंसक शक्ति (युद्ध) के द्वारा मानवजाति अपनी समस्याओं को कम करती आई है। विजेता को सही ओर पराजित को गलत मानने की परम्परा रही है। निर्बल की हार या प्रबल की जीत को हम प्रकृति का नियम मानते रहे हैं। आज सभ्य जीवन में भी इसी नियम का वर्चस्व है। इसी के फलस्वरुप सैनिक संगठन एवं शस्त्रीकरण को बल मिला है। उपनिवेशकाल में जब स्वराज्य की मांग तीव्र थी तब गांधी ने यह कहने का साहस किया था— हिंसा से मिलने वाला स्वराज्य मुझे नहीं चाहिए। उन्होंने कहा—जो स्वराज्य हिंसा के जोर से मिलेगा

वह जल्दी ही साबित हो जायेगा कि वह भीतर से स्वराज्य था ही नहीं। राजनीतिक स्वराज्य भले ही प्राप्त हो जाए किन्तु भारत का काम उस स्वराज्य से चलेगा जो अहिंसा के बल से प्राप्त होगा और स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भी अपने संचालन के लिए बल के रुप में अहिंसा को ही स्वीकारेगा। गांधी के इस चिंतन से स्पष्ट है कि अहिंसा के प्रवर्तन को धर्म और नैतिकता के क्षेत्र से आगे बढ़कर समाज और राज्य के क्षेत्र में आना होगा। इतिहास साक्षी है कि राज्य और समाज पर शक्तिशालियों के ही बोल –बाले एवं निर्बल को दमित होकर ही रहने की स्थिति अधिक समय तक चल नहीं सकी है। विज्ञान ने और हमारे मस्तिष्क एवं अनुभूति के विकास ने हमें परस्पर इतना समीप ला दिया है कि सेना व शस्त्र के बल का आधार झूठा लगने लगा है। इनका खतरा हमारे सामने है। अब जीतने वाला कोई बचेगा ही नहीं। हिंसा का यह बल स्वयं विजयी को भी ध्वस्त कर देगा। यह बल वस्तुतः आत्मघाती है। इस बल के सहारे जो होगा, वह उसी के सहारे अंततः गिरा भी दिया जाएगा। सभी चाहते हैं कि अस्त्र–शस्त्र का प्रयोग न करना पड़े। ऐसी स्थिति बने कि परमाणु शस्त्र न बनें, जो हैं उन्हें नष्ट कर दिया जाए किन्तु बावजूद इसके शस्त्रों की होड़ लगी है। प्रसिद्ध साहित्यकार जैनेन्द्र कुमार लिखते हैं–"वे देश अपने सैनिकों में कमी कर रहे हैं जिनके पास आधुनिक शस्त्रास्त्र हैं अमुक संख्या में मैन पावर (मनुष्य शक्ति) मिलकर एक 'हार्स पावर' (अश्व शक्ति) बनती है और एक मशीन में असंख्य हार्स पावर हो सकती है। जहां एक आदमी एक बंदूक संभाल सकता है वहां एक दूरमारक अस्त्र की तुलना में हजार लाख आदमी नगण्य हो जाते हैं इस होड़ में मनुष्य हारता है ओर पशु शक्ति (अश्व शक्ति) जीतती है।

"समाज का जीवन जिस शक्ति से चलता हो, अंततः वही शक्ति कार्य संचालन और सुरक्षा के लिए राज्य के पास रह जाती है। यों अहिंसा राज्य की ओर से नहीं आ सकती। लेकिन यह भी सही है कि राज्य जितना हिंसा के बल का आधार रखेगा समाज में भी उस बल की उतनी ही प्रतिष्ठा होगी।" अतः राजनीति में अहिंसा के बल का आधार आवश्यक हो जाता है।

2.4.7.1 वर्ग का उन्मूलन हो या शोषण एवं हिंसा का

यह प्रश्न भी विचारणीय है कि राज्य या समाज में किसी वर्ग–विशेष या श्रेणी–विशेष का उन्मूलन हो या शोषण और हिंसा का। देखा जाए तो शोषण वर्गों या स्तरों में नहीं है बल्कि परस्पर संबंधों की प्रणालियों में है, समाज के ताने–बाने में है जिसे आज संरचनात्मक हिंसा कहा जाता है। इसलिए किसी वर्ग विशेष या श्रेणी विशेष का उन्मूलन आवश्यक एवं यथार्थ नहीं है। उन्मूलन जब हिंसा या शोषण का होता है तो उसमें किसी का नाश नहीं होता। ऐसा उन्मूलन सिर्फ उनके बीच संबंधों में फैले हुए जहर को ही समाप्त करता है। संबन्धों में प्रेम हो जाने से वर्ग एवं श्रेणियों का भेद अच्छा लगने लगता है क्योंकि ऐसा कोई अंतर ही नहीं हो तो स्नेह एवं प्रेम के संचार के लिए अवकाश ही कहां रहेगा? बल्कि एक भी विविधता व विचित्रता को कम करना जगत की शोभा को कम करने जैसा हो जाता है। आचार्य महाप्रज्ञ कहते हैं–"विरोध हमारी कल्पना है। पक्ष के साथ प्रतिपक्ष इस जगत का सौन्दर्य।" दुश्मनी मिटाने के लिए जब–जब दुश्मन को मिटाया गया है, दुश्मनी बढ़ी ही है मिटी नहीं। दुश्मनी मिटाने की उस इच्छा में ही भ्रांति है, दोष है, अधूरापन है। सच्ची वर्ग हीनता में किसी व्यक्तित्व की संभावनाएं नष्ट नहीं होगी और वे सभी अपनी विलक्षणता में खिलने का अवसर पायेंगे। इसी प्रकार राज्य या शासन व्यवस्था एवं सुविधा के लिए ही होगा, दमन नहीं करेगा। हिंसा के साधनों की जरुरत ऐसी व्यवस्था में न्यूनतम होगी। हिंसा की प्रेरणा एवं हिंसा प्रकरणों के सहारे की जरुरत उतनी ही मात्रा में आवश्यक होती है, जितना समाज के पास अहिंसक शक्ति प्रेरणा का अभाव होता है। कहने का तात्पर्य है–वर्ग हीनता के लिए वर्गों को मिटाना नहीं है बल्कि संबंधों में उस सहयोगिता और स्वस्थता को लाना है जिनमें वर्ग चेतना ही अनावश्यक हो जाए।

परिस्थिति से चेतना बनती है और उपजती है, यह मान भी लिया जाए तो क्या परिस्थिति का सार–तथ्य यह नहीं है कि कौन कहां है, उसकी वास्तविकता तो इसमें है कि जो–जो जहाँ है, उनके बीच के संबन्धों में क्या तत्त्व प्रवहमान है? जो राजनीतिक क्रांति परिस्थिति का परिवर्तन स्थानान्तरण सत्ता हस्तान्तरण आदि को ही महत्त्व देती है वे सफल नहीं हो सकी हैं। वही क्रांति सफल हुई है जब वह राजनीतिक से आगे सामाजिक–आर्थिक होने की ओर बढ़ी है। अर्थात् केवल परिस्थिति परिवर्तन से आगे उसने मानव संबंधों पर ध्यान दिया है।

2.4.8 आक्रमण और अहिंसा

हिंसा का एक रूप है आक्रमण। आक्रमण का जबाब अहिंसा कैसे दे? अहिंसा के पास हिंसक आक्रमण का कोई जवाब नहीं है, यह मान लेना शक्ति को हिंसा में ही केन्द्रित कर देना होगा। हिंस्त्र पक्ष केवल हिंसा–आक्रमण ही जानता है किन्तु मनुष्य उस पर विजय प्राप्त करता है तो इसलिए कि वह मात्र आक्रांता नहीं है, उससे कुछ अधिक हैं। वह किसी को मारने के अलावा भी कुछ सोच सकता है। यह अतिरिक्तता ही मनुष्य का बल है जो निश्चय ही हिंसा का बल नहीं है। आक्रमण डर से होता है और डर पैदा

करने के लिए होता है। डर से उसे परास्त नहीं किया जा सकता। निडरता ही डर को परास्त कर सकती है। यह निडरता अहिंसा से ही आती है।

विश्व और भारत में जब भी आक्रमण हुए, वे आधिपत्य की लालसा से हुए। समकालीन विश्व में भी जहां–जहां युद्ध या हिंसा हो रही है, वह भी ऐसी ही लालसा का नमूना है। हिंसक प्रयासों को संगठित करने का प्रयत्न गरीबी मिटाने या विकास के लिए नहीं हुआ अपितु आधिपत्य विस्तार अथवा पुनर्स्थापन के लिए ही किया गया है। अतएव हिंसा राजनीतिक सांस्कृतिक प्रभुत्व की लालसा का अथवा खोए–हुए राजनीतिक– सांस्कृतिक आत्म गौरव की पुनरप्रतिष्ठा की लालसा का नतीजा है। भारत के लोक जीवन में अहिंसा प्रतिष्ठित रही। यद्यपि यहां भी राजनीतिक युद्ध लड़े जाते रहे हैं। इसका कारण यह है कि भारत की जीवन दृष्टि और विश्व दृष्टि में अहिंसा केन्द्रीय तत्त्व रही है। हमारे पूर्वज इस निष्कर्ष पर पहुंचे थे कि अगर हम दूसरों की जीवन दृष्टि का अपमान करेंगे तो आज भले ही वे निर्बल हों, कल वे सबल होकर हमारी जीवन दृष्टि का अपमान कर सकते हैं, क्योंकि इतिहास की गति चक्रीय है। इतिहास की इस चक्रीय गति को मानना दर्शन में अहिंसा को मानना है। जीवन को अक्षुण्ण मानने की भारतीय परम्परा में जीवन मात्र का सम्मान सबसे पवित्र अवधारणा है और अहिंसा सबसे पवित्र धर्म। यही कारण है कि जब भारतीयों ने सुदूर चीन, मंगोलिया, साइबेरिया, वर्मा, ईरान, अफगानिस्तान, थाई देश आदि में अपना सांस्कृतिक प्रभाव प्रतिष्ठित किया, तब भी उन देशों की परम्पराओं का नाश नहीं किया। इसी जीवन दृष्टि के प्रभाव से यहां भी जब शक, हूण, कुषाण आदि आए तो यहीं की परम्पराओं में घुलमिल गये। अहिंसा का राजनीति में यही व्यावहारिक रुप था।

2.5 सामाजिक क्षेत्र में अहिंसा का व्यवहार

2.5.1 समाज का आधार अहिंसा

डॉ. राधाकृष्णन लिखते हैं– एक विस्तृत अर्थ में संसार धर्म के सहारे भी टिका हुआ है। उनका कहना है–आगामी कल का संसार अहिंसा पर आधारित होगा, उसे होना ही होगा। संभव है यह एक सुदूर लक्ष्य जान पड़े, आदर्श लोक (Utopia) जान पड़े परन्तु यह तनिक भी अप्राप्य नहीं है क्योंकि इसका निर्माण अभी और यहीं प्रारम्भ किया जा सकता है। कोई भी व्यक्ति भविष्य की जीवन पद्धति–अहिंसात्मक पद्धति–को, बिना यह प्रतीक्षा किये कि दूसरे भी उसे अपनायें, अभी अपना सकता है। और यदि एक व्यक्ति ऐसा कर सकता है तो मनुष्यों के समूचे के समूचे समूह ऐसा क्यों नहीं कर सकते?"

2.5.2 शुद्ध साधनों को स्वीकृति

डॉ. राधाकृष्णन् आगे लिखते हैं –"यदि शाश्वत अच्छाई (अहिंसा) को समय रहते प्राप्त करना हो तो हमें केवल उन साधनों का प्रयोग करना होगा, जो तात्त्विक रुप से अच्छे हैं। जल्दी या बल प्रयोग के बुरे रास्तों के आलंबन का परिणाम विफलता ही होगा। अपराधी को बलपूर्वक नियंत्रित रखने या उसे नैतिक रुप से प्रभावित करने के ढ़ेर उपायों में से दूसरा अधिक अच्छा है। शारीरिक दमन की अपेक्षा नैतिक रीति–समझा–बुझाकर कार्य करनेकी पद्धति अधिक अच्छी है, क्योंकि इसमें यह स्वतंत्रता निहित है कि दूसरा व्यक्ति उस दबाव को चाहे तो स्वीकार करे चाहे अस्वीकार कर दे। ....मनुष्य को नष्ट कर देने में कोई लाभ नहीं है, हमें उसके आचरणों को नष्ट करना चाहिए। ....यदि समाज को बचाना है तो वर्तमान व्यवस्था (दमनकारी) का प्रतिरोध आवश्यक है।"

यह विचारणीय है कि क्रूरतम विश्व विजेताओं ने अपनी वैयक्तिक नृशंसताओं के बारे में कुछ भी कहा हो लेकिन एक नई सभ्यता या दुनिया बनाने के लिए हिंसा का समर्थन नहीं कर सके। हिंसा के समर्थक भी यह जानते हैं कि उनके साधन हिंसा में कोई नैतिक या तत्वतः अपनी चमक नहीं है, इसलिए अपने पक्ष में वे राष्ट्रप्रेम, पवित्रता, अव्यवस्था के खिलाफ जिहाद, नस्लवाद, श्रेष्ठत्व के लिए प्रयत्न आदि मनमोहक नारों का प्रचार करते हैं। किसी भी समाज के लिए यह समझना आवश्यक है कि विवेक के रास्ते कौन से हैं? आज हिंसा एवं अर्थ की सत्ता केन्द्र में आ गई है और मनुष्य नेपथ्य में चला गया है। टाफलर की पुस्तक 'पावर शिफ्ट' की केन्द्रीय चर्चा यही है कि शक्ति कहां से कहां सरक गई है। उनका निष्कर्ष है कि अब शक्ति–केन्द्र अर्थ में केन्द्रित हो गया है जबकि वास्तविकता यह है कि दुनिया के सारे प्रश्न (परिग्रह– अपरिग्रह, हिंसा–अहिंसा, नैतिकता–अनैतिकता आदि) मनुष्य के हैं।

2.5.3 भय केन्द्रित समाज बनाम समतामूलक समाज

आज समाज अर्थ केन्द्रित–परिग्रह केन्द्रित हो गया है। परिग्रह भय की सबसे जटिल मनोग्रंथि है। परिग्रह समाज में उस बीमार मानसिकता की जानकारी देता है जो किसी अज्ञात भय से वस्तुओं का संग्रह करता है तथा उन पर कब्जा कर उन्हें पाकर

बेहिसाब ताकत का अनुभव करता है। यह अपने को सबसे अलग, सबसे विशिष्ट, अद्वितीय दिखाने की जिद है जो वस्तुतः परिग्रह का वास्तविक रुप दंभ ही है। बराबरी का समाज अथवा समतामूलक समाज अहिंसा के व्यवहार को मूर्त रुप देता है। समतावादी समाज के लिए अहिंसा की ताकत का प्रतिपादन भगवान महावीर का महत्वपूर्ण अवदान है। वे अहिंसा की ताकत को जानकर उसे जीवन शैलियों में समाहित होने देते हैं। वे अहिंसा को विचारों का आधार बनाकर अनेकांत का प्रतिपादन करते हैं जो दूसरों के अनुभवों की अवमानना का निषेध करता है। इस प्रसंग में यह भी देखना चाहिए कि महावीर केवल शारीरिक शस्त्र के विरुद्ध ही नहीं, विचार के बुनियादी ढांचे को भी हिंसा से अलग करते हैं। यहीं उनका विरोध वर्ण व्यवस्था एवं सामाजिक कर्मकाण्डों से भी है जो समतामूलक समाज के पक्ष का गंभीरता से समर्थन नहीं करती। बुद्ध भी इसी अभिजन परम्परा के विरोध में अपना संघर्ष शुरु रखते हैं। वे करुणा के सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हैं और मनुष्य को दुखमुक्त करने का बीड़ा उठाते हैं। बुद्ध की करुणा एवं दुखमुक्त करने का उपक्रम सबके लिए है। वहां भी वर्ण व्यवस्था अमान्य है।

2.5.4 शक्ति संतुलन और अहिंसा

आचार्य महाप्रज्ञ इस प्रश्न पर विचार करते हैं कि क्या समाज में शक्ति संतुलन की पृष्ठभूमि का निर्माण हुए बिना अहिंसा का विकास संभव है? वे कहते हैं–"मैं चिरचिंतन के पश्चात इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूं कि हिंसा का बीज शक्ति के प्रदर्शन से प्रस्फुटित होता है। एक व्यक्ति या वर्ग शक्ति का प्रदर्शन कर दूसरे व्यक्ति या वर्ग को अधीन रखना चाहता है। अधीनीकृत व्यक्ति या वर्ग में इस हिंसा की प्रतिक्रिया होती है? असंतुलित शक्ति के वातावरण में हिंसा की आग भभक उठती है। इसीलिए भगवान् महावीर ने कहा था –"न अज्झावेयत्वा" किसी भी मनुष्य पर हुकूमत मत करो, उसे अपने अधीन बनाकर मत रखो–इसी विचार पर समाज में अहिंसा प्रतिष्ठित हो सकती है।" वे पुनः लिखते हैं–"स्वतंत्रता का आधार है कि शक्ति का संतुलन–सबकी शक्ति का विकास या सबको शक्ति के विकास का उचित अवसर।" समाज में अहिंसा का यही व्यवहार प्रतिष्ठित हो सकता है।

2.5.5 पदार्थ का नहीं इच्छा का नियंत्रण आवश्यक

समतावादी समाज में अहिंसा के व्यवहार का एक दूसरा पक्ष यह है कि वहां यद्यपि सामाजिक विकास को अनपेक्षित नहीं माना गया है। भौतिकपक्ष और उसकी समृद्धि हेतु परिग्रह आवश्यक समझा गया है। किन्तु यहां यह विमर्शनीय है परिग्रह इच्छा है पदार्थ नहीं। पदार्थ के साथ इच्छा जुड़ने से वह परिग्रह बनता है। इच्छा का नियंत्रण किया जा सकता है पदार्थ का नहीं। सामाजिक जीवन में अपरिग्रह का अर्थ है– इच्छा का परिमाण। पदार्थ का अर्जन शुद्ध साधनों से किया जा सकता है किन्तु अर्जित पदार्थ के असीमित भोग को मान्यता नहीं दी गई है। इस संदर्भ में इच्छा परिमाण को ही मान्यता है। पदार्थ होते हुए भी उसका भोग न करना सही मायने में संयम है, अहिंसा है। इसी दर्शन पर ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त विकसित हुआ और इसी दर्शन पर विसर्जन का विचार पनपा। इच्छा परिमाण के विचार के साथ जैनों ने आत्मतुला का विचार भी दिया। परिवार, जाति, समाज, राष्ट्र, मनुष्य मात्र, प्राणी मात्र इनमें क्रमशः व्यापकता है। व्यक्ति का स्व जितना विशाल बनता है, उतना ही वह स्वयं भी विशाल बन जाता है। अपने परिवार जनों से प्रारम्भ होकर प्राणीमात्र को समान मानने का स्वर आत्मतुला का ही विस्तार है। समाज में यह आत्मतुला का सिद्धान्त बुद्धि के स्तर पर तो फैला हुआ है किन्तु मोह के कारण इसका क्रियान्वयन नहीं हो पाया है। आत्मतुला का संस्कार मोह से दबा होने के कारण ही व्यक्ति दूसरों का दमन, शोषण एवं उत्पीडन करता है। उन्हें मारता, सताता या क्षति पहुंचाता है। आत्मतुला की आंतरिक शक्ति का उदय हो जाने पर बाहरी भेद एवं भौगोलिक आदि भेद ही नहीं मिटेंगे, इनका उन्माद भी समाप्त हो जायेगा।

2.5.6 समाज में अहिंसा के प्रयोग के सूत्र

अहिंसा के कुछ सूत्र, जिनका समाज में व्यवहार समतामूलक समाज की स्थापना को गति दे सकता है, निम्नानुसार है–

2.5.6.1 सापेक्षता

1. कोई भी व्यवस्था सापेक्षता की मर्यादा से बाहर नहीं है। प्रत्येक व्यवस्था सापेक्ष होती है पूर्ण नहीं। इसलिए किसी एक व्यवस्था का अहंकार उचित नहीं।
2. सभी दृष्टिकोण परस्पर विरोधी नहीं है, सापेक्ष हैं–एक दूसरे के पूरक हैं।
3. विरोध और अविरोध के समन्वय से ही व्यवस्था संभव है।

2.5.6.2 सहअस्तित्व

1. एक दूसरे के प्रति आश्वासन व्यवस्था को मजबूत करता है।

2. एक दूसरे के विश्वास से सामाजिक एवं राजनैतिक स्थिरता एवं शांति संभव है।
3. यह विश्वास सभी को अभय प्रदान करेगा जिससे समाज में हिंसा की संस्कृति समाप्त हो सकेगी।

2.6 धार्मिक क्षेत्र में अहिंसा का व्यवहार—

2.6.1 धर्म का स्वरूप

धर्म जीवन का शाश्वत मूल्य है। सत्य साक्षात्कार की प्रक्रिया का नाम धर्म है। इस दृष्टि से धर्म एक अखण्ड चेतना है, जिसे विभक्त करना कठिन है। व्यावहारिक दृष्टि से देखें तो धर्म के अनेक भेद दया, क्षमा, करुणा, प्रेम, सत्य तप आदि को केन्द्र में रखकर धर्म के अनेक रुप सामने आयें तो भी उनमें मतभेद नहीं होगा। मतभेद है—संप्रदायों में। धर्म अपने व्यापक अर्थ को खोकर सम्प्रदाय के अर्थ में रुढ़ हो गया है। सम्प्रदाय का अस्तित्व विचारभेद की परिणति का परिणाम है। किसी भी देश में अनेक विचार व मत होना कोई समस्या नहीं है। समस्या है अपने विचार को सर्वोच्च मानकर दूसरों के विचार को तुच्छ मानना। यहीं से असद्भावों का बीज वपन होता है।

2.6.2 धर्म—सापेक्ष सत्य का प्रतीक

हर धर्म सत्य की अभिव्यक्ति करता है। यदि सत्य के सापेक्ष दृष्टिकोण को मान लिया जाए तो सभी धर्म सत्यके एक अंश को प्रकट करते हैं। केवल उसी विशिष्ट दृष्टिकोण को सत्य मानकर दूसरों के दृष्टिकोण को ठुकराना धार्मिक संघर्षों का प्रमुख कारण है। अहिंसा की सापेक्ष दृष्टि से देखें तो सभी धर्मों में सापेक्ष सच्चाई है, उनकी अपनी विशिष्टता है। जैनों की अहिंसा, बौद्धों की करुणा, इसाईयों की सेवा, इस्लाम का भाईचारा व वेदों का आचार अपने आप में विशिष्ट है। धर्मों के इन अच्छे तत्वों के प्रति उदारता का दृष्टिकोण धार्मिक क्षेत्र में अहिंसा का प्रयोग है।

2.6.3 अहिंसा के प्रयोग के सूत्र

निरपेक्ष पूर्णता हमारी कल्पना है, पूर्णता सदैव मर्यादित होती है। धार्मिक सहिष्णुता एवं साम्प्रदायिक सद्भाव की दृष्टि से अहिंसा के कुछ सूत्र प्रयोग में लाने योग्य है—

1. अपने मत का प्रतिपादन करें, दूसरों पर आक्षेप न करें।
2. दूसरे के विचारों के प्रति सहिष्णुता रखें।
3. दूसरे समुदाय या अनुयायियों के प्रति घृणा या तिरस्कार के भाव का त्याग।
4. सम्प्रदाय परिवर्तन करने वालों के साथ अवांछनीय व्यवहार का वर्जन।
5. धर्म के मौलिक तत्वों—यथा—सत्य अहिंसा, त्याग, प्रेम, सेवा आदि को सार्वभौमिक बनाने का सामूहिक प्रयत्न।
6. विभिन्न संस्कृतियों के ज्ञान को बढ़ावा देना जिससे धार्मिक कट्टरपन समाप्त हो सके।
7. बच्चों को पूर्वाग्रह मुक्त रखना। खुली मानसिकता का विकास धार्मिक क्षेत्र में अहिंसा का सबसे सफल प्रयोग है।

2.7 पर्यावरण के क्षेत्र में अहिंसा के प्रयोग

2.7.1 मानव अस्तित्व—प्रकृति और व्यक्ति का तादाम्य

हमारी प्रथम आवश्यकता हमारा अस्तित्व है। यदि हमारा अस्तित्व ही नहीं है तो अन्य सारी समस्याएं स्वतः ही समाप्त हो जाती हैं। हमें हमारे अस्तित्व के लिए श्वास—प्रश्वास हेतु आक्सीजन, पीने के लिए स्वच्छ पानी व खाने के लिए भोजन चाहिए। इसलिए एक ऐसा पर्यावरण चाहिए जो हमें ऑक्सीजन युक्त हवा, पानी व ऐसा भोजन दे, जिसका पाचन हम आसानी से कर सकें। यदि ये चीजें प्रदूषित हों अथवा न हों तो हमारा अस्तित्व खतरे में पड़ सकता है। इस बाह्य पर्यावरण का संरक्षण कई घटकों पर निर्भर करता है, जिसमें से एक घटक है—संयम। संयम अर्थात अहिंसा जो हमें सही ढंग से मार्गदर्शित कर ऐसी आदतें विकसित करने में सहयोग करती है, जिससे पर्यावरण का संरक्षण संभव हो सके।

सभ्यता के विकास के साथ—साथ हमारे रहने के तरीकों में पर्यावरणीय परिवर्तन हुआ है, हमारी इच्छाएं बढ़ी हैं तथा आदतें बदली हैं। यह परिवर्तन विकास का अंग तो है, लेकिन जैसा कि टैगोर ने कहा है— "वन एवं प्राकृतिक जीवन मानव जीवन को एक निश्चित दिशा देते थे। मानव प्राकृतिक जीवन के परिवर्तन रूपी विकास के साथ निरन्तर संपर्क में था। भारत की भारती का मूलाध ाार प्रकृति के साथ तादात्म्य रखना ही था। प्रकृति के साथ हमारे इस तादात्म्य को अध्यात्म ही नियंत्रित करता था, भले ही यह भय

के कारण हो या आस्था के कारण या हमारे भले बुरे पहचान के ज्ञान के कारण।" यदि ऐसे नियंत्रण से स्वस्थ समाज का निर्माण होता है तो यह स्वस्थ जीवन के लिए ऐसा पर्यावरण देगा तो शारीरिक व सामाजिक आवश्यकताओं के अनुरूप होगा। अतः प्राकृतिक विकास के साथ—साथ अध्यात्म—अहिंसा का विकास भी आवश्यक है तभी प्रकृति और व्यक्ति का तादात्म्य बना रह सकता है। भारतीय धर्मग्रन्थ इसी तादात्म्य भाव को प्रकट करते आये हैं, कभी अहिंसा और संयम के द्वारा, तो कभी करुणा भाव के द्वारा, तो कभी पूजा और सेवा के द्वारा, तो कभी प्रेम के द्वारा।

2.7.1.1 वैदिक साहित्य में प्रकृति व मानव के तादात्म्य भी प्रकट करते हुए कहा गया है— "जिस पृथ्वी पर वृक्ष, वनस्पति एवं औषधियां है तथा जहां स्थिर और चल सब जीवों का निवास है उस विश्वंभरा धरती के प्रति हम कृतज्ञ हैं।" वराह पुराण (138—39) व स्कन्द पुराण (20—53) में तो पेड़—पौधों एवं वनस्पतियों के रोपण, पोषण एवं संवर्द्धन को पुण्य कर्म माना गया है तथा उन्हें काटना निंदनीय कर्म। विष्णु पुराण (4.8.15) व मनुस्मृति (5.5.45) में पशु—पक्षी वध करने वाले को हत्या का दोषी माना गया है। ऐसे व्यक्ति की पूजा—पाठ एवं तीर्थभ्रमण सभी निष्फल हैं। ब्रह्मवैवर्त पुराण में पृथ्वी की पीड़ा रूपायित करते हुए कहा गया है— मैं उन दुष्टों के भार से दुखी हूं जो पशुओं की हत्या करते हैं। गीता के अनुसार मनुष्य प्रकृति का एक अंग है अतएव प्रकृति को नष्ट करना स्वयं को नष्ट करना है।

2.7.1.2 बौद्ध दर्शन में सामाजिक एवं प्राकृतिक पर्यावरण संरक्षण की केन्द्रीय दृष्टि रही है। बौद्ध दर्शन मनुष्य की अपेक्षा प्रकृति केन्द्रित भी कहा जा सकता है, क्योंकि यहां मनुष्य प्रकृति का अभिन्न अंग है। बौद्ध दर्शन वासनाओं की उपशान्ति, विवेक चेतना एवं करुणा के द्वारा मन और प्रकृति की अन्तरक्रियाओं पर प्रकाश डालता है। हमारे से बाहर कुछ नहीं है, हम ही पर्यावरण हैं और पर्यावरण ही हम हैं—इस एकीकृति के साथ ही मानव और प्रकृति की एकात्मकता है तथा प्रकृति का कानून दूसरे प्राणियों की तरह मानव पर भी लागू होता है। बौद्ध दर्शन में कहा गया है कि हर प्राणी दूसरों से विशिष्ट है। वह अपने से निम्न प्राणियों के प्रति सहयोग करे, करुणा रखे। इसमें पशु—पक्षियों, पेड़—पौधों आदि के प्रति भी करुणा की दृष्टि समाविष्ट है। इसलिए यहां संरक्षण केवल व्यक्तिगत ही नहीं बल्कि समूचे पर्यावरण तंत्र का है। यहां करुणा व जीवन के प्रति आदर संपूर्ण प्राणीजगत के लिए है।

बौद्ध दर्शन की मान्यता है कि व्यक्ति में क्रूरता तृष्णा के कारण है। तृष्णा ही संसाधनों के असीमित उपभोग की बात करती है। जब तक इस तृष्णा पर नियंत्रण नहीं होता, पर्यावरण संरक्षण संभव नहीं है। तृष्णा प्रकृति का अंधाधुंध दोहन कर प्राकृतिक पर्यावरण को भी क्षति पहुंचाती है। इसलिए तृष्णा को वश में कर मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु संसाधनों के उपभोग का सीमांकन की प्रेरणा आवश्यकता व लोभ में अंतर करते हुए इस पृथ्वी पर सरल और प्राकृतिक जीवन यापन करने का संदेश पर्यावरण के क्षेत्र में अहिंसा का ही व्यवहार है।

2.7.1.3 जैन दर्शन जीवन का अस्तित्व केवल मनुष्यों, पशु—पक्षियों या कीड़े—मकोड़े में ही नहीं मानता, अपितु पृथ्वी, पानी, अग्नि, हवा तथा वनस्पति में भी उसका अस्तित्व स्वीकार करता है। वास्तव में षड्जीवनिकाय जीवन की सूक्ष्म दृष्टि है तथा जैन दर्शन की एक विशिष्ट स्वीकृति है। इसलिए सूक्ष्म जीव—हिंसा से बचने के लिए जैन दर्शन ने जितना विचार किया है, उतना अन्य किसी दर्शन ने नहीं किया। इकोनोमिक्स ऑफ काउप्रोटेक्शन' में लिखा है— हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि मिट्टी, वनस्पति,पशु और मानव का परस्पर गहरा संबंध है। जिस प्रकार मानव में जीवन है, पशु और वृक्ष आदि सजीव है, उसी प्रकार मिट्टी भी सजीव हैं कोट्याकोटि अति सूक्ष्म ओर्गनिज्म मिट्टी, हवा पानी में सदा क्रियाशील हैं। षड्जीवनिकाय में पृथ्वी, जल, हवा, अग्नि एंव वनस्पति सूक्ष्म ओर्गनिज्म हैं, जिन्हें आंखों से नहीं देखा जा सकता। गतिशील ओर्गनिज्म स्थूल और दृश्य हैं। महावीर ने कहा— न तो अपनी आत्मा के अस्तित्व को नकार सकते हैं और न विश्व के अस्तित्व को। अपनी आत्मा की स्वीकृति विश्व के सभी प्राणियों के अस्तित्व की स्वीकृति है। मानव जीवन और प्रकृति के संबंधों का यह उत्कृष्ट चित्रण है जिसके केन्द्र में अहिंसा—संयम प्रतिष्ठित है।

'जीवो जीवस्य जीवनम्' के स्थान पर जैन दर्शन का संदेश है—"परस्परोपग्रहो जीवानाम्" जीव एक दूसरे का उपकार—सहयोग करते हैं। अहिंसा विचार समग्र है। संयम के द्वारा ही हम प्रकृति का संरक्षण कर सकते हैं। संयम केवल जीवों के प्रति ही नहीं अचेतन पदार्थों के प्रति भी हो। क्योंकि "द्रव्यनिमित्तं हि संसारिणां वीर्यमुपजायते"—हमारी सारी शक्ति अचेतन पदार्थ—द्रव्य के निमित्त से ही पैदा होती है। यदि पर्यावरण बिगड़ गया तो हमारी सारी शक्ति ही समाप्त हो जायेगी। इस सिद्धान्त को जानने वाला पर्यावरण की उपेक्षा कैसे कर सकता है?

2.7.1.4 गाँधी साहित्य : पर्यावरण के प्रति उदार भाव के संदर्भ में गांधी जी ने प्रकृति के नियम को याद दिलाते हुए हमें सावधान किया कि प्रकृति हर मनुष्य की आवश्यकताओं को पूर्ण करने में सक्षम है, किन्तु किसी एक भी मनुष्य के लोभ को पूरा करने

की इसमें क्षमता नहीं है। इसलिए उन्होंने सुख एवं शांति के लिए आवश्यकताओं को कम करने का विचार प्रकट किया तथा स्वयं कष्ट सहकर दूसरों को सुख पहुंचाने की सीख दी। व्यक्ति प्रकृति से जितना ग्रहण करे उतना ही उसे वापस लौटाये, तब ही व्यवस्था संतुलित रह सकती है।

पर्यावरण संरक्षण एवं आचार की दिशा में अहिंसा के व्यवहार ने प्रकृति के संदर्भ में ब्रह्माण्ड को अखण्ड रूप में तथा मानव को उसकी आवश्यक लघुतम इकाई मानकर मानव, प्रकृति तथा ब्रह्माण्ड में सामंजस्य बिठाकर अंतरनिर्भरता के दर्शन (Principle of Interdepandance) को मान्य किया है। संयमित जीवन दर्शन को व्यक्त कर इच्छाओं के अल्पीकरण (Limitation of wants) के द्वारा मानव प्रवृत्ति को सुविधावाद तथा उपभोक्तावाद से मुक्त रखने का प्रयोग निश्चित रूप से पर्यावरण के प्रति स्वस्थ संबंधों को ही उजागर करता है।

2.8 ग्राम स्वराज्य का चिंतन

ग्राम स्वराज्य का चिंतन भारतीय परिस्थितियों के सर्वथा अनुकूल है तथा अहिंसा पर अवलंबित है। चूंकि भारत की आर्थिक व्यवस्था मुख्य रूप से कृषि पर अवलंबित है, अतः ग्राम से ही आर्थिक एवं बौद्धिक उन्नति का चिंतन पर्यावरण संतुलन के मार्ग को प्रशस्त रखने की क्षमता रखता है। परम्परागत कृषि को 'सतत कृषि' (Substanable Agriculture) कहा गया है, क्योंकि वह स्थायित्व सम्पन्न, अविनाशी और सदा गतिमान रहने वाली है। उसमें ऐसे शाश्वत तत्व, घटक या उपादान रहे हैं, जिन्हें विकल्प सोचते समय नजर अंदाज नहीं किया जा सकता। ऐसी व्यवस्था पशु व मनुष्यों के अटूट रिश्ते पर टिकी थी।

2.9 उद्योगवाद

औद्योगिक देशें के झंडे तले केन्द्रित उद्योगवाद का सबसे बड़ा हमला परम्परागत खेतीबाड़ी पर हुआ। केन्द्रित उद्योगवाद के चंहुमुखी सघन विस्तार के कई आयाम खुलते गये, जिनमें हरित क्रांति सर्वप्रमुख है। उसने कृषि क्षेत्र के समूचे परिदृश्य को ही जड़मूल से बदल दिया। खेतीबाड़ी और प्रकृति को अलग–अलग करके देखा जाने लगा। सहस्त्राब्दियों से चला आ रहा कृषि और पारिस्थितिकी का अटूट रिश्ता दफन कर दिया गया। प्रकृति का स्थन प्रौद्योगिकी ने ले लिया, जिसने प्रकृति की सारी मर्यादाओं का उल्लंघन कर अकूत उत्पादन की अनंत संभावनाओं का कृत्रिम संसार खड़ा कर दिया। कालांतर में केन्द्रीकरण की शक्तियां उत्तरोतर सघन और उत्कृष्ट होती गयी।विकेन्द्रीकरण और विपुलता के स्थान पर निर्जीव एकरूपता आ गई।

बीसवीं सदी की शुरूआत में ही यह भांप लिया गया था कि औद्यौगिक सभ्यता आसुरी है, मानवता के लिए सबसे बड़ा अभिशाप है और उसकी शैतानियत टिड्डी दल की तरह सारी दुनिया का सफाया कर देगी। ग्रामीण परिवेश के अनुरूप सरल प्रौद्योगिकी, प्राकृतिक सौंदर्य ही मानवीय अस्तित्व के लिए उपयुक्त है। वर्तमान में कथित विकास तथा भ्रामक प्रगति के मापदण्ड विशाल उद्योग रासायनिक पदार्थों के रिसाव तथा अनेक हानिकारक गैसों के द्वारा वातावरण को प्रदूषित कर रहे हैं। गांधी संभवतः ग्रामोद्योग, कुटीर उद्योग एवं ग्रामीण विकास के चिंतन एवं दर्शन के द्वारा संभावित शहरीकरण एवं बेरोजगारी आदि के खतरे से मनुष्य की रक्षा एवं पर्यावरण संरक्षण आदि को निश्चित करना चाहते थे।

2.10 वैकल्पिक चिकित्सा

पर्यावरण संरक्षण की दिशा में वैकल्पिक चिकित्सा का संदेश एवं व्यवहार भी अहिंसा की दृष्टि से अपनी विशिष्ट भूमिका का निर्वहन करता है। आधुनिक जगत् में चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र में तथा सौंदर्य प्रसाधनों के अनुसंधान व निर्माण हेतु जिस क्रूरतम अमानवीय व्यवहार का परिचय दिया जा रहा है, वह पारिस्थितिकी तंत्र के विनाश का अवश्यंभावी कारण बन सकता है। इस संदर्भ में टेरी (टाटा एनर्जी रिसर्च इन्सटीट्यूट) द्वारा किये गये शोध के निष्कर्ष बताते हैं कि चिकित्सा एवं प्रसाधन सामग्री के अनुसंधान व निर्माण के नाम पर जिस अनुपात में जीव–जन्तुओं पर प्रयोग हो रहे हैं, यदि उसी अनुपात में मानव–जाति पर प्रयोग किये जाएं तो चार साल में मानव–जाति विलुप्त हो जायेगी। अर्थात प्रतिवर्ष लगभग डेढ़ अरब संख्या में पशु–पक्षियों को मनुष्य को निरोगी तथा सुंदर बनाने हेतु क्रूरतम तरीके से मार दिया जाता है। इस आधुनिक चिकित्सा पद्धति का विकल्प प्राकृतिक तत्वों यथा जल, मिट्टी, वायु द्वारा मनुष्य को निरोगी करने की पद्धति है। इस चिकित्सा पद्धति को प्राकृतिक चिकित्सा की संज्ञा दी जाती है, जो आजकल विदेशों व अन्य स्थानों पर प्रचलित हो रही है।

अंततः कवि क्वांग फेलो के शब्दों में –वैभवपूर्ण विश्व हमारे चारों ओर हैं, किन्तु इससे भी अधिक वैभवपूर्ण विश्व हमारे भीतर है। आंतरिक संयम की प्राप्ति से ही बाह्य विश्व का वैभव संवर सकता है। यदि व्यक्ति प्रकृति का पोषण करे तो प्रकृति भी अपने खजाने

को दोनों हाथों से लुटाने में संकोच नहीं करेगी। वन–उद्यान प्रकृति का अटूट खजाना है। भारतीय मन ने हमेशा इनकी वंदना की है। प्रकृति ने उसे संवरण भी दिया है और सहारा भी, शक्ति भी दी है और साधना भी, राग भी दिया है और वैराग्य भी–कुल मिलाकर प्रकृति ने अपनी सारी संपदा उस मनुष्य के लिए जुटाकर रख दी है जो आठों याम मन और वन का मेल कराने को आतुर रहता हो।

2.11 सारांश

अहिंसा का सफल व्यवहार मानव जीवन के हर क्षेत्र में सफलतापूर्वक किया जा सकता है। यह व्यवहार मानव जीवन को खुशहाल तो करेगा ही उसे शांति भी देगा तथा 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का हमारा स्वप्न साकार हो सकेगा।

2.12 प्रश्नावली

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. अहिंसा किसका धर्म है?
2. अर्थशास्त्र से संबंधित चाणक्य का सूत्र क्या है?
3. विकास की संक्षिप्त परिभाषा लिखें
4. वास्तविक संप्रभु कौन है तथा उसकी अंतरात्मा क्या है?
5. क्या वैधानिकता लोकतंत्र विरोधी हो सकती है?
6. लोकतंत्र के प्रेरक सिद्धान्तों के नाम लिखिए।
7. सबसे पवित्र अवधारणा एवं सबसे पवित्र धर्म क्या है?
8. डॉ. राधाकृष्णन् के अनुसार भविष्य का संसार किस पर आधारित है?
9. संयम किसका आवश्यक है– पदार्थ का या इच्छा का।
10. धर्म क्या है?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. अहिंसा के व्यवहार को किन–किन श्रेणियों में बांटा जा सकता है?
2. अर्थशास्त्र का उद्देश्य क्या है?
3. निर्बाध विकास से आप क्या समझते हैं?
4. वैधानिकता बनाम लोकतांत्रिकता को स्पष्ट करें।
5. शुद्ध सायन पर संक्षिप्त विचार लिखिए।
6. क्या शक्ति संतुलन की पृष्ठभूमि के बिना अहिंसा का विकास संभव नहीं हैं? स्पष्ट करें।
7. समाज में अहिंसा के प्रयोग के सूत्रों का उल्लेख करें।
8. बौद्ध दर्शन में पर्यावरण से संबंधित विचारों का उल्लेख करें।
9. षड्जीवनिकाय में किन–किन निकायों के जीवों को सम्मिलित किया गया है?

निबंधात्मक प्रश्न

1. आर्थिक क्षेत्र में अहिंसा के व्यवहार पर विस्तार से प्रकाश डालें।
2. हिंसा किसी भी स्थिति में नैतिक नहीं है–स्पष्ट करें।
3. विभिन्न धर्म–दर्शनों में पर्यावरण संरक्षण से संबंधित विचारों का विस्तार से वर्णन करें।
4. धर्म के क्षेत्र में अहिंसा के व्यवहार का क्या स्वरूप हो सकता है–स्पष्ट करें।

bdkbl&3 % vfgalk vkj thou 'kyh] vfgalk vkj vkgkj] oL=] fpfdRlk vkfn vfgalk vkj m|kx&/ka/k0;kikj vkj foKku] vfgalk vkj f'k{kk

lajpuk

3.0 प्रस्तावना

3.1 उद्देश्य

3.2 अहिंसा : व्यावहारिक एवं पारमार्थिक

3.3 अहिंसा और जीवन शैली

3.3.1 अहिंसा की साधना

3.3.2 अहिंसा और आहार

3.3.2.1 पशुपालन और अहिंसा

3.3.2.2 खेतों का आविष्कार

3.3.2.3 मांसाहार के लिए तर्क

3.3.2.4 मनुष्य के लिए मांस स्वाभाविक भोजन नहीं

3.3.2.5 मांसाहार का प्रभाव

3.4 अन्न और मन का संबंध

3.5 आहार का एक पहलू अनाहार

3.6 अहिंसा और वस्त्र

3.6.1 चमड़े का उपयोग और हिंसा

3.6.2 चमड़ा रंगने के लिए खून का उपयोग

3.7 अहिंसा और चिकित्सा

3.7.1 औषधियों के निर्माण में पशुबध

3.7.2 बंदरों का क्रूर व्यापार

3.7.3 अहिंसा के लिए प्राकृतिक जीवन

3.8 अहिंसा–उद्योगधंधे, व्यापार और विज्ञान

3.8.1 उद्योगधंधे

3.8.1.1 शोषण और हिंसा

3.8.1.2 साम्राज्यवाद और बेकारी से होने वाली हिंसा

3.8.1.3 स्वतन्त्रता का ह्रास

3.8.1.4 ग्रामोद्योग और लघुउद्योगों की आवश्यकता

3.8.2 व्यापार

3.8.2.1 व्यापार में हिंसा और अहिंसा

3.8.2.2 पशुओं का क्रूर व्यापार

3.8.3 विज्ञान

3.8.3.1 विज्ञान की परम्परा

3.8.3.2 विज्ञान का सदुपयोग और दुरुपयोग

3.8.3.3 अहिंसा की आवश्यकता

3.8.3.4 भौतिक परमाणु बनाम चैतन्य परमाणु

3.9 अध्यात्म और विज्ञान का समन्वय

3.10 अहिंसा और शिक्षा
- 3.10.1 अहिंसा के शिक्षण की आवश्यकता
- 3.10.2 अहिंसा के शिक्षण में शारीरिक कार्य अनिवार्य
- 3.10.3 अहिंसा की शिक्षा कौन देगा

3.11 अहिंसा और पर्यावरण
- 3.11.1 कष्ट सहिष्णुता एवं तपवृत्ति की कमी
- 3.11.2 जनसंख्या वृद्धि
- 3.11.3 अन्नोत्पादन
- 3.11.4 अहिंसक समाधान

3.12 सारांश

3.13 अभ्यास प्रश्नावली

3-0 i:Lrkouk

इस इकाई में आप जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में अहिंसा के व्यवहार का अध्ययन करेंगे। अहिंसा केवल साधु–संन्यासियों अथवा ऋषि–मुनियों के अभ्यास की चीज नहीं है यह तो आम आदमी के जीवन में व्यवहार योग्य जीवन मूल्य है। इस इकाई के अध्ययन से आप यह जान सकेंगे कि कैसे आप अपनी–जीवनशैली को अहिंसा पर आधारित कर सकते हैं तथा अपने जीवन में हिंसा को न्यूनतम किया जा सकता है।

भोजन से प्रारम्भ कर विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी तक अहिंसात्मक दृष्टिकोण क्या हो सकता है तथा इस दृष्टिकोण से कैसे हिंसा जनित समस्याओं का समाधान हो सकता है–इस इकाई के अध्ययन से आपकी दृष्टि व्यापक बनेगी तथा आप इन मुद्दों पर स्वतंत्र रूप से सोच पायेंगे। आपकी यह सोच इस विश्व को अहिंसात्मक बनाने में सहयोगी होगी।

3-1 mís';

इस पाठ के निम्नलिखित उद्देश्य हैं–

1. अहिंसा के व्यावहारिक एवं पारमार्थिक स्वरूप को जानना।
2. अहिंसक जीवन शैली के बारे में जानना तथा उसे व्यवहार में लाना।
3. अहिंसा और आहार वस्त्रों एवं चिकित्सा के सम्बन्ध को जानना।
4. अहिंसा और व्यापार, उद्योग धंधे एवं विज्ञान के सम्बन्ध को जानना तथा उसका व्यवहार सीखना।
5. पर्यावरणीय समस्याओं का अहिंसा के व्यवहार द्वारा समाधान करना।

मनुष्य सामाजिक प्राणी है, वह समाज में जीता है और मिलजुलकर रहता है। सामाजिक जीवनका अर्थ है संबंध का जीवन। मनुष्य ने अनेक संबंध स्थापित किये। उसमें काम की वृत्ति है, इसलिए अपनी कामनाओं की पूर्ति के लिए उसने परिवार बनाया। उसमें स्नेह है, इसलिए उसने मित्रों का वर्ग तैयार किया। आचार्य महाप्रज्ञ लिखते हैं– "ये सारे संबंध उपयोगिता के आधार पर बने। आपस में मिलजुलकर रहने मात्र से अहिंसा की कल्पना कर लेना शायद संगत बात नहीं है। इन सारे संबंधों में व्यावहारिक अहिंसा फलित हुई है। एक आदमी दूसरे आदमी को नहीं सताता, पड़ोसी पड़ोसी को नहीं सताता, परिवार का सदस्य परिवार को नहीं सताता। क्या यह अहिंसा है?

आचार्य महाप्रज्ञ के अनुसार यह अहिंसा स्वार्थ उपयोगिता से जुड़ी है। पति और पत्नी का परस्पर स्वार्थ होने से वे एक दूसरे को नहीं सताते किन्तु जहां स्वार्थ टकरा जाते हैं वहां उनके बीच झगड़ा हो जाता है। यदि साथ में रहने को अहिंसा मान लें तो हिंसा पर चर्चा हो ही नहीं सकती। ऐसी अहिंसा, अहिंसा का व्यावहारिक प्रयोग है, पारमार्थिक नहीं। ....स्वार्थ पर आधारित अहिंसा वास्तविक नहीं होती, व्यावहारिक होती है जो हमारे संबंधों पर निर्भर करती है। मनुष्य सामाजिक प्राणी है, इसका अर्थ यह नहीं निकाला जा सकता है कि वह अहिंसक समाज का समर्थक है।अहिंसा को उसने मात्र अपनी उपयोगिता के स्तर पर स्वीकार किया होता है। जब काम प्रबल होता है, अहं प्रबल होता है, हिंसा उसके लिए वर्जनीय नहीं रहती।

3-2 vfgalk% 0;kogkfjd ,oa ikjekfFkZd

व्यावहारिक हिंसा उपयोगिता प्रेरित या स्वार्थ प्रेरित अहिंसा है। आज हमारी जीवन शैली व्यावहारिक अहिंसा से प्रमादित जीवनशैली हे। इसलिए जब कभी एक समाज एक जाति एक संप्रदाय अथवा एक परिवार में हिंसा भड़कती है तो उसकी चिंगारिया जहां-तहां उछलती नजर आती है। मिलजुलकर कहना एक विशेष प्रयोग है, जिसका आधार व्यावहारिक अहिंसा है पर यह पारमार्थिक (वास्तविक) अहिंसा की भूमिका नहीं। इसलिए जब तक हमारी जीवन शैली पारमार्थिक अहिंसा से प्रभावित नहीं होगी, तब तक समाज में चल रही हिंसा को कम नहीं किया जा सकता।

पारमार्थिक अहिंसा का आहार आत्मा है, सब आत्माओं की समानता है। यहां मनुष्य एवं अन्य किसी भी प्राणी की आत्मा में कोई भेद अभीष्ट नहीं है। जैसे सुख–दुख की अनुभूति मुझे होती है, वैसे ही सब प्राणियों को होती है। इसलिए जैन आगम आचारांग में कहा गया–किसी भी प्राणी को दुख नहीं देना चाहिए, सताना नहीं चाहिए, किसी का अधिकार नहीं छीनना चाहिए और किसी को मारना नहीं चाहिए। आत्मौपम्य की ऐसी चेतना जब तक नहीं जागती, पारमार्थिक अहिंसा का विकास नहीं होता।

व्यावहारिक एवं पारमार्थिक अहिंसा के विवेचना के पश्चात अब हम अहिंसा के व्यवहार पर चर्चा करेंगे।

3.3 अहिंसा और जीवन शैली

यह जान लेना ही काफी नहीं है कि अहिंसा बहुत अच्छी चीज है, यह मानव जीवन के लिए बड़ी उपयोगी है। इस ज्ञान से लाभ ही क्या, यदि इसके अनुसार आचरण न हो! आज दुनिया में यह मान्य हो चुका है कि अहिंसा को विकसित किये बिना विश्व शान्ति नहीं हो सकती। बहुत सारे व्यक्ति अहिंसक बनना भी चाहते हैं, पर वे जीवन-क्रम, जीवन शैली को बदलते नहीं, फलत: वे अहिंसक बन नहीं पाते।

मनुष्य सब प्राणियों में श्रेष्ठ हैं। इस अवधारणा ने हिंसा को उच्छृंखल बना दिया 'न मानुवात् श्रेष्ठतरं हि किंचित'। इसका आशय यह होना चाहिए कि मनुष्य को जैसा शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक विकास मिला है वैसा किसी अन्य प्राणी में नहीं है। इसका फलितार्थ यह नहीं होना चाहिए कि मनुष्य श्रेष्ठ है, वह जो कुछ करें क्षम्य है, उचित हैं आज के वैज्ञानिक जगत् का अभ्युपगम यह है कि मनुष्य को बचाने के लिए सब कुछ किया जा सकता है।

यह विचार आवश्यक है कि क्या इस जगत् में केवल मनुष्य का ही अस्तित्व है। क्या अकेला मनुष्य अपना अस्तित्व बनाये रख सकता है? विकसित होने का अर्थ अविकसित का शोषण और उत्पीड़न नहीं है। उसका अर्थ है-इच्छा और अपेक्षाओं का संचयन।

भगवान् महावीर ने कहा है-अविकसितप्राणी विवेक नहीं कर सकता। मनुष्य विकसित है इसलिए उसमें विवेक की क्षमता है। वह हिंसा को जीवन की नियति मानता हुआ भी उससे बच सकता है। महावीर ने हिंसा को दो स्तरों पर देखा-अर्थ हिंसा और अनर्थ हिंसा। 'अट्ठा दंडे अगट्ठा दंडो' हिंसा अनुपादेय है, उसे छोड़ो-इस चिंतन पर जिज्ञासा हुई-हिंसा को छोड़कर जिया नहीं जा सकता है। जिज्ञासा का समाधान करते हुए कहा गया जैसी आकांक्षा जीने के लिए है क्या हिंसा की भी वैसी ही आकांक्षा है? यदि नहीं तो जीने के लिए जो जरूरी नहीं वैसी हिंसा को छोड़ दे यह हमारी जीवन शैली का आधार हो सकता है।

हिंसा की कमी परिग्रह की कमी पर निर्भर है और परिग्रह की कमी भोग की कमी पर। लोग चाहते हैं—जो भोग विलास हैं, वे चलते रहें। भोग विरति के बिना जो हिंसा-विरत हैं, वे बुराई की जड़ को सींचते हुए भी परिणामों से बचना चाहते हैं। जो हिंसा विरति या अहिंसा का विकास चाहते हैं, उन्हें यह समझना चाहिए कि हिंसा के कारणों को त्यागे बिना हिंसा को त्यागने का परिणाम दम्भ होगा, अहिंसा नहीं।

अहिंसक जीवन-शैली का एक महत्त्वपूर्ण सूत्र है—सुविधावादी जीवन शैली में परिवर्तन। हम प्रदूषण से चिन्तित हैं, त्रस्त हैं। समाज सुविधा छोड़ नहीं सकता किन्तु वह असीम न हो—यह विवेक आवश्यक है। यदि सुविधाओं का विस्तार निरन्तर जारी रहा, आडम्बर और विलासपूर्ण जीवन चलता रहा तो अहिंसा का स्वप्न यथार्थ में परिणत नहीं होगा। इच्छाओं की वृद्धि से हिंसा को पल्लवन मिला है। जब तक इच्छा का संयम नहीं होगा, जीवन शैली में संयम को प्रतिष्ठा नहीं मिलेगी तब तक अहिंसा का सार्थक परिणाम नहीं आ सकेगा।

जीवन शैली का अनिवार्य अंग है—श्रम की प्रतिष्ठा। वर्तमान में श्रम के प्रति थोड़ी हीन भावना पैदा हो गई है। श्रम करने वाला छोटा होता है और श्रम न करने वाला बड़ा होता है। इस दृष्टिकोण से श्रम की व्यवस्था और महत्त्व को भुला दिया। इस

सच्चाई को भुला देना ठीक नहीं होगा कि- दुनिया में जितने भी महान् व्यक्ति हुए हैं, वे प्राय: श्रमिक परिश्रमी हुए हैं। श्रम निष्ठा और स्वालम्बन जीवन शैली का मुख्य अंग होना चाहिए।

मनुष्य में लालच है, बहुत पाने की इच्छा है। वह श्रम कम करना चाहता है, धन अधिक पाना चाहता है। इस मनोवृत्ति से अपराध को बढ़ावा मिलता है। अपराध यानि बिना श्रम किये पैसा पाने की मनोवृत्ति। इस मनोवृत्ति ने अपराध को एक नया आयाम दिया है। अपराध और हिंसा को बढ़ाने में एक बड़ा निमित्त है — मादक द्रव्यों का सेवन। अहिंसा के विकास के लिए आवश्यक है — जीवन शैली व्यसन से मुक्त हो।

अत: अहिंसक जीवन शैली के लिए संयम, स्वालम्बन और व्यसन-मुक्त जीवन का होना अपेक्षित है।

3.3.1 अहिंसा की साधना

यह ठीक है कि अहिंसा का — विशेषत: मानसिक अहिंसा का — आचरण कठिन है। गांधीजी ने बतलाया है कि 'मानसिक अहिंसा की स्थिति को प्राप्त करने के लिए कठिन अभ्यास की जरूरत है। हमारे दैनंदिन जीवन में व्रत और नियमों का पालन आवश्यक है। वह अनुशासन हमें रुचिकर भले ही न हो, फिर भी वह उतना ही आवश्यक है, जितना कि एक सिपाही के लिए। परन्तु मैं यह मानता हूं कि यदि हमारा चित्त इसमें सहयोग न दे तो केवल बाह्य आचरण एक दिखावे की चीज हो जाएगी, जिससे खुद हमारा नुकसान होगा और दूसरों का भी। मन, वचन और शरीर में जब उचित सामंजस्य हो, तभी सिद्धावस्था प्राप्त हो सकती है। लेकिन यह अभ्यास एक प्रचंड मानसिक आन्दोलन होता है। अहिंसा कोई महज यांत्रिक अभ्यास नहीं है। यह तो हृदय का सर्वोत्कृष्ट गुण है और साधना से ही प्राप्त हो सकता है।'

स्पष्ट है कि अहिंसा का आचरण सरल नहीं है, परन्तु यदि यह बहुत आसान हो, इसके लिए मनुष्य को कुछ त्याग करना, कष्ट सहना आवश्यक न हो तो फिर इसे प्राप्त करने में गौरव ही क्या है! यह बहुत कल्याणकारी है, मानवता के विकास के लिए अनिवार्य है तो मनुष्य को इसके लिए सब प्रकार का प्रयास करना ही चाहिए। अस्तु, गांधीजी ने कहा है — 'अहिंसा एक महाव्रत है। तलवार की धार पर चलने से भी कठिन है। देहधारी के लिए उसका सोलह आने पालना असम्भव है। उसके पालन के लिए घोर तपश्चर्या की जरूरत है। तपश्चर्या का अर्थ यहां त्याग और ज्ञान करना चाहिए।

3.3.2 अहिंसा और आहार

आहार — प्रारम्भ में आदमी यह सोचने की स्थिति में नहीं था कि कौनसा पदार्थ खाकर अपनी भूखा शान्त करें। उसे खाने योग्य जो भी मिल जाता, उसे ही खा लेता। वह जानबूझ कर न फलाहारी (या शकाहारी) था और न मांसाहारी ही। उसका भोजन इस बात पर निर्भर था कि उसके रहने की जगह खाने को क्या मिलता है। कुछ जगह कुदरती तौर पर बहुत समय तक काफी फल, शाक, मूल-कन्द आदि मिलते रहे, वहां आदमी का मांस न खाना स्वाभाविक हुआ। दूसरी जगहों में जहां कुदरती फल आदि की कमी रही, वहां आदमी के लिए मांस-मछली आदि खाने के सिवा कोई चारा न था। मांस-भक्षण में आदमी को यह सोचने का अवसर नहीं था कि किस पशु-पक्षी का खाये और किसका न खाये। जिनको भी वह अपनी शक्ति या साधनों से प्राप्त कर सकता था, उन्हें खाकर अपना निर्वाह करता था।

3.3.2.1 अहिंसा की ओर पहला चरण; पशु-पालन — अहिंसा की दिशा में मनुष्य का पहला खास कार्य पशु-पालन था। धीरे-धीरे आदमी को मालूम हुआ कि कुछ जानवर ऐसे हैं कि उन्हें मार कर खाने की अपेक्षा उन्हें पाल कर रखना अधिक लाभकारी है। गाय, भैंस, बकरी आदि के पालने से बहुत समय तक दूध मिलता रह सकता है। घोड़ा, गधा, बैल आदि से सवारी तथा सामान ढोने का काम लिया जा सकता है। कुत्ता शिकार में सहायता देने के अलावा रात को चौकसी करने या पहरा देने का काम कर सकता है। ऐसा ज्ञान प्राप्त होने पर इस तरह के जानवरों को पालने की बात चल निकली। फलस्वरूप पशु-वध एक सीमा तक कम हो गया। पशु-पालन से उनकी पशुरूपी सम्पत्ति उत्तरोत्तर बढ़ने लगी।

3.3.2.2 खेती का अविष्कार — अहिंसा की दृष्टि से मनुष्य के भोजन के इतिहास में खेती का तो बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान है। दुधारू पशुओं का पालन आरम्भ हो जाने के बाद से लोगों को भोजन सामग्री के रूप में दूध से अच्छी सहायता मिलने लगी थी; पर उसका परिमाण बहुत सीमित ही था। आदमी को कुछ भोजन कुदरती तौर पर पैदा होने वाले फल, मूल, कन्द आदि के रूप में भी मिलता था। पर जनसंख्या बढ़ने पर मनुष्य के लिए यह सब मिलकर भी काफी नहीं होता था। अधिकतर आदमी

पूर्ण–रूप से या अंशत: मांसाहार पर निर्वाह करने को मजबूर थे। खेती का ज्ञान हो जाने पर आदमी तरह–तरह के फल, शाक के अतिरिक्त विविध अन्न पैदा करने लगा। अब उसकी भोजन–सामग्री में महत्वपूर्ण वृद्धि हुई, यह वृद्धि स्वयं उसके अधीन थी। वह अपनी मेहनत से इसे पैदा करने में समर्थ हो गया। जिन जगहों में भूमि उपाजाऊ थी, और सिंचाई के लिए यथेष्ट जल सुलभ था, वहां तो पैदावार आसानी से हो जाती थी। अन्य स्थानों में भी जहां तक सम्भव हुआ अन्न आदि पैदा करने का प्रयत्न किया गया, और उसमें कहीं कम और कहीं अधिक सफलता मिली। इस प्रकार मनुष्य को मांसाहार पर निर्भर रहने और पशु– वध करने की विवशता कम हो गयी। आदमी जो भोजन करता है, उससे शरीर में अनेक प्रकार के रसायन बनते हैं। भोजन के द्वारा मस्तिष्क में न्यूरो–ट्रांसमीटर बनते हैं, जो तन्त्र के संप्रेषक होते हैं। इनके द्वारा मस्तिष्क शरीर का संचालन करता है। वैज्ञानिकों ने चालीस प्रकार के न्यूरो–ट्रांसमीटरों का पता लगा लिया है। ये सारे भोजन से बनते हैं। भोजन के द्वारा एमिनो एसिड आदि अनेक प्रकार के एसिड बनते हैं। यूरिक एसिड जहर है। वह भी भोजन से बनता है। हमारी प्रवृति और भोजन के द्वारा अनेक विषैले तत्त्व शरीर में बनते हैं। अत: इस बात को जानना होगा कि किस प्रकार का भोजन करने पर मानसिक समस्याएं पैदा होती हैं, भावनात्मक उलझनें बढ़ती हैं, हिंसा की वृत्ति बढ़ती है।

3.3.2.3 मांसाहार के लिए तर्क — आजकल मांसाहार बहुत प्रचलित है। आचार्य महाप्रज्ञ लिखते हैं– मांसाहार के विषय में एक तर्क सामने आता है कि मांस और अण्डे में प्रोटीन बहुत होता है। अधिक मात्रा में व्यवहृत प्रोटीन लाभप्रद नहीं होता। प्रत्येक व्यक्ति के लिए एक दिन में 10–15 ग्राम प्रोटीन आवश्यक होता है। पर मांसाहार करने वाले या अंडा खाने वाले अधिक प्रोटीन खाते हैं। वे प्रोटीन के आधार पर ही मांसाहार का समर्थन करते हैं। वे कहते हैं, शाकाहार में इतना प्रोटीन नहीं मिल सकता, इसलिए मांसाहार करना उचित है। प्रोटीन में भी प्राणिज प्रोटीन तो अत्यन्त हानिकारक होता है। वनस्पति प्रोटीन उपयोगी होता है, पर वह भी मात्रा में लिया हुआ। मांसाहारी और अण्डा खाने वाला व्यक्ति जितनी भयंकर बीमारियों से ग्रस्त होता है, उतना शाकाहारी कभी नहीं होता। आज की अनेक बीमारियों का सीधा सम्बन्ध भोजन से है। ब्लडप्रेशर, हार्टट्रबल, अल्सर, केन्सर, किडनी की विकृति — इन बीमारियों के अन्यान्य कारणों में भोजन भी एक मुख्य कारण है।"

3.3.2.4 मनुष्य के लिए मांस स्वाभाविक भोजन नहीं — आजकल हम बहुत से व्यक्तियों के मांसाहारी होने की बात सुनते हैं और अनेक आदमियों के नित्य मांस खाने की बात जानते हैं। इससे हमारी यह धारणा हो गयी है कि मनुष्य के लिए मांस स्वाभाविक भोजन है। पर वास्तव में यह बात नहीं। आदमी की शरीर–रचना पर विचार करने से यह स्पष्ट है कि वह मांस खाने के लिए नहीं बना है। आदमी के नख, दांत, जबड़े, आंतें या आमाशय ऐसा नहीं है जैसा मांसाहारी पशुओं का होता है, मनुष्य का शरीर शाकाहारी पशुओं से मिलता है। इस प्रकार मांस खाना उसकी प्रकृति नहीं, बल्कि धीरे–धीरे अभ्यास और संस्कार या वातावरण से उसे इसकी आदत पड़ी है। अत: मांसाहार मनुष्य के लिए अप्राकृतिक है।

3.3.2.5 मांसाहार का प्रभाव — शरीर का स्वस्थ, शक्तिमान, फुर्तीला, सहनशील होना शाकाहार से ही संबंधित है। मांसाहार से क्रोध, उत्तेजना, वासना आदि की वृद्धि होती है, आदमी अशांत, चंचल, ईर्ष्यालु एवं झगड़ालू होता है। मन के इन विकारों का शरीर पर दूषित प्रभाव पड़ना स्वाभाविक और अनिवार्य है।

3.4 अन्न और मन का संबंध

आहार के तीन प्रकार हैं — राजसिक आहार, तामसिक आहार और सात्त्विक आहार। आचार्य महाप्रज्ञ लिखते हैं–जीवन का भोजन के साथ गहरा सम्बन्ध है। इसलिए कहा गया — जैसा खावे अन्न, वैसा होवे मन। अन्न और मन का सम्बन्ध गहरा है। वर्तमान में व्यक्ति में जो भावात्मक असंतुलन है, उसका आहार भी एक मुख्य घटक है। व्यक्ति के आहार में वे पदार्थ अधिक हैं जो भावात्मक असंतुलन पैदा करते हैं। दूसरे शब्दों में, अन्न और भावों का गहरा सम्बन्ध है। इसीलिए शास्त्रों एवं आगमों में भोजन सम्बन्धी अनेक वर्जनाएं की गईं।जैसे तामसिक भोजन न करें, मादक द्रव्यों का सेवन न करें आदि आदि। योद्धाओं के लिए तामसिक आहार मांस–मदिरा आदि की छूट थी क्योंकि क्रूर हुए बिना दूसरों को नहीं मारा जा सकता। क्रूरता के लिए तामसिक आहार की उपयोगिता थी। सात्विक आहार करने वाले के मन में करुणा जागती है वह दूसरों को मार नहीं सकता।"

3.5 आहार का एक पहलू अनाहार

आचार्य महाप्रज्ञ आहार के एक दूसरे पहलू पर भी विचार करते हैं। वह पहलू है–अनाहार, उपवास। अनाहार या उपवास शरीर में स्थित विष–द्रव्यों के निष्कासन का एक अच्छा उपाय है। यह धार्मिक दृष्टि से ही नहीं शारीरिक एवं भावनात्मक स्वास्थ्य

की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। वे भगवान् महावीर को उद्‌धृत करते हुए कहते हैं—

रसापगामं न निसेविचत्वा, पाचं रसादित्तिकरा नराणं

दित्त च कामां समभिदवंती, दुमं जहा सानफलं व पक्खी।

रसों का-दूध, दही, मक्खन, चीनी आदि का-अधिक सेवन नहीं करना चाहिए। ये रस शरीर में विकार पैदा करते हैं आदमी को दृप्त बनाते हैं। जहां तृप्ति होती है वहां काम वासनाएं उभरने लगती है और ये व्यक्ति को इसी तरह पीड़ित करती है जैसे स्वादु-फल वाले पेड़ को पक्षी। अतः भेजन का मापदण्ड स्वाद या उसें सुंदर दिखने में नहीं है उसका मापदण्ड है भावनात्मक स्वास्थ्य। यह आहार और अनाहार के संतुलन से मिल सकता है और यह अहिंसा की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है।

3.6 अहिंसा और वस्त्र

प्रारम्भ में व्यक्ति खेती नहीं करता था, खेती करना नहीं जानता था, जंगली अवस्था में वह अपने शरीर को वृक्षों की छाल या पत्तों आदि से ढक लिया करता था। क्रमशः आदमी ने पशु-पालन का प्रयोग किया और भेड़ों की ऊन संग्रह करके उसके धागे बनाये और उनका बाद में कपड़ा बुना। सन, पटसन के पौधों के रेशे का कपड़े के लिए उपयोग किया। फिर कपास की खेती की जाकर, रूई के सूत के कपड़े बनने लगे कपड़े की बहुतायत हो गयी। इससे वैज्ञानिक उन्नति होने पर अन्य पदार्थों के भी कपड़े बनने लगे। तब मनुष्य का वस्त्र-संकट उस समय की दृष्टि से कम हो गया। इससे पशु-बध के लिए मजबूरी न रही।

परन्तु इस बीच में एक नयी बात हो गयी। अनेक आदमी सूती या ऊनी आदि कपड़े से संतोष न कर ऐसे रेशम आदि के कपड़े पहनने लगे, जिनके लिए असंख्य प्राणी मारे जाते हैं। रेशम के कीड़े शहतूत के पेड़ पर पाले जाते हैं, जिनके पत्ते खाकर वे जीवित रहते हैं। इन कीड़ों के बच्चों की रक्षा के लिए इनके चारों ओर एक कोमल पदार्थ का खोल रहता है, बच्चे बड़े होने पर अपने खोल को तोड़कर बाहर निकल आते हैं। इन टूटे हुए खोलों से भी रेशम तैयार होती है, पर वह इतना अच्छा, बढ़िया नहीं होता। बढ़िया रेशम के लिए कीड़ों के बड़े होने से पहले ही उनके खोलों को उबलते हुए गर्म पानी में डाला जाता है, इस प्रकार लााखों कीड़ों को मार कर थोड़ा सा बढ़िया रेशम तैयार होता है। स्पष्ट है कि रेशमी कपड़े पहनने वाले आदमी कितनी अनावश्यक हिंसा के लिए उत्तरदायी हैं।

खास कर यूरोप अमरीका की शौकीन स्त्रियां अपनी पोशाक में ऐसे पक्षियों के पर लगवाती हैं जो बहुत दुर्लभ होते हैं। उनके इस फैशन के वास्ते दूर-दूर तक तलाश करने पर मिलने वाले तरह-तरह के हजारों मूक पक्षियों को अपनी जान खोनी पड़ती है।

3.6.1 चमड़े का उपयोग और हिंसा

पहले आदमी अपने जूतों आदि के लिए उसी चमड़े का उपयोग करते थे, जो स्वयं, कुदरती तौर पर मरने वाले पशुओं से मिल जाता था। सभ्य आदमी तो बढ़िया मुलायम चमड़ा चाहता है, और यह पशुओं को मारने से ही मिलता है। अब चमड़े का उपयोग भी बहुत बढ़ गया है। आज कल सभ्यता की लहर में आदमी अपनी आवश्यकताएं बढ़ाते जा रहे हैं, और व्यापारी वर्ग इसमें उनका सहायक हो रहा है। वस्त्रों के साथ अब चमड़े की बहुत सी चीजें बनने लगी हैं—हैंडबेग, मनीबेग, दस्ताने, बिस्तर-बंद, जूते के फीते, घड़ी के फीते, चश्मों के केस, कापी या किताब के कवर, हंटर, टोपी की पट्टी आदि। इन चीजों के बनाने के लिए चमड़ा तैयार करने में प्रत्येक देश में कितने पशुओं की हत्या हर रोज की जाती होगी? ये सभी हत्याएं अनावश्यक हैं, क्योंकि इसके बिना मनुष्य का काम चल सकता है, जो चीजें इस चमड़े से बनायी जाती हैं वे अन्य पदार्थों की बनायी जा सकती हैं।

चमड़े की वस्तुओं का उपयोग बढ़ने से पशु-हत्या बहुत बढ़ गयी है। इसके अलावा विचारणीय बात यह भी है कि हत्या का ढङ्ग. भी बहुत रोमांचकारी हो गया है; पशुओं को बहुत क्रूरतापूर्वक मारा जाता है। कारण यह है कि साधारण तौर से पशु को एक दम मार देने से, उससे चमड़ा इतना मुलायम और बढ़िया नहीं मिलता, जितना आज का सभ्य और शौकीन आदमी चाहता है। जिस चमड़े से बूट, चप्पल, बक्स और हंटर बनाये जाते हैं, उसको प्राप्त करने के लिए बूढ़े बैलों, गाय, भैंस आदि पशुओं को पानी के नल के नीचे खड़ा करके उसके मुंह, पांव और सिर को मजबूती से बांध दिया जाता है, जिससे पशु बिलकुल हिल-डुल न सके और दर्द से कराह भी न सके। पश्चात् पशु पर नल द्वारा पानी छिड़का जाता है और उसे खूब लचकदार बेंत से पीटा जाता है। इससे उसका शरीर सूजकर फूल जाता है, चमड़ा नर्म और मोटा हो जाता है। फिर पैनी कटार लेकर पशु के माथे में चुभो कर उसके शरीर के ठीक बीचों बीच चीरता हुआ पूंछ तक चीरा जाता है, और इस प्रकार उसकी खाल उतारी जाती है। कुछ अच्छे चमड़े के लिए निर्दयता और अधिक की जाती है। जितना बढ़िया और मुलायम चमड़ा तैयार करना हो, उतना ही उसके

लिए अधिक नृशंसता और अमानुषिकता बर्ती जाती है। जिसे काफ-लेदर (बछड़े का चमड़ा) या 'क्रोम लेदर' कहा जाता है उसके लिए तो जवान हृष्ट-पुष्ट बछड़ों को मारा जाता है। पहले उन्हें धीरे-धीरे परन्तु बहुत देर तक पीटा जाता है, जिससे रक्त का संचार खूब तेजी से होने लगे। फिर उन्हें चारों तरफ कटघरे में बंद करके उसे कांटेदार मशीन के ठीक नीचे खड़ा कर दिया जाता है। मशीन का पहिया घूमता है और जीवित बछड़े की खाल उधेड़ ली जाती है। इस निर्दयता से तैयार होने वाले चमड़े की चीजें दूसरे लोग तो इस्तेमाल करते ही हैं, अपने आप को अहिंसक समझने वाले अनेक सभ्य और शौकीन लोग भी करते हैं। ज्ञातव्य है कि भारत चमड़े का सर्वाधिक उत्पाद तथा निर्यात करने वाला देश है।

3.6.2 चमड़ा रंगने के लिए पशुओं के खून का उपयोग

पहले जब स्वाभाविक मौत से मरे पशुओं का चमड़ा काम में लाया जाता था तो वह वृक्षों की छाल से ही रंग लिया जाता था। परन्तु जब से चमड़ा पशुओं को मारकर तैयार किया जाने लगा है, तब से उसकी बढ़िया चीजों को खून से रंगना आरम्भ हो गया। यह रंग पक्का होता है। खून निकालने के लिए मशीनें होती हैं। स्वस्थ गाय या जवान बछड़े को मशीन के पास खड़ा कर दिया जाता है और औजार से उनकी नस काट कर मशीन की नली लगा दी जाती है। धीरे-धीरे मशीन शरीर का सारा खून खींच लेती है और दो-तीन घंटे बाद वह पशु चल बसता है। इस प्रकार बढ़िया चमड़े ने पशु-हत्या बढ़ायी ही, उसके रंगे जाने के लिए भी हिंसा बढ़ी। आदमी अपने फैशन और शौक को कम करे और आधुनिक समाज में सभ्य वर्ग में न गिने जाने का तैयार हो जाए तो यह हिंसा सहज ही बन्द हो सकती है।

3.7 अहिंसा और चिकित्सा

पिछले पृष्ठों में इस बात का विचार किया गया है कि भोजन के सम्बन्ध में मनुष्य कहां तक अहिंसक है तथा होना चाहिए। आधुनिक काल में मनुष्य औषधियों का भी बहुत सेवन करता है। कितने ही व्यक्ति तो कभी-कभी इनका सेवन भोजन की ही तरह, और कुछ दशाओं में भोजन से भी अधिक आवश्यक समझते हैं। इस अध्याय में हमें यह भी विचार करना है कि औषधियों के लिए कितनी हिंसा होती हैं, और यह किस प्रकार कम हो सकती है। अधिकांश औषधियां तो ऐसी होती है जिनसे मनुष्य को कोई लाभ नहीं होता; उलटा उनसे स्वास्थ्य-हानि ही होती है। इस प्रकार औषधियों में जो हिंसा होती है, वह मनुष्य के स्वार्थ की दृष्टि से भी हानिकारक है।

प्रारम्भ में आदमी प्रकृति के निकट रहता और सदा प्राकृतिक जीवन बिताता था। इसलिए स्वस्थ रहता था, बीमार पड़ने का अवसर बहुत कम आता था, और आकस्मिक दुर्घटनाओं की बात छोड़कर वह अपनी पूरी आयु तक जीता था — जो साधारणतया सौ वर्ष मानी गयी है। क्रमशः मनुष्य सभ्यता की ओर बढ़ता गया, उसके खानपान, रहनसहन आदि में कृत्रिमता आती गयी, वह प्रकृति से दूर होता गया, और फलस्वरूप उसका स्वास्थ्य बिगड़ता गया। मनुष्य भूल जाता है कि प्रकृति ने हमारे शरीर में ही रोग-निवारण की भी व्यवस्था करदी है, और यदि हम कभी बीमार पड़ें तो प्रकृति से दिये हुए पदार्थों — जल, वायु, तेज (धूप) और मिट्टी — के उपचार से नीरोगी हो सकते हैं।

3.7.1 औषधियों के निर्माण में पशु-वध

पहले आदमी कुछ जड़ी-बूटी या वनस्पति के रूप में मिलने वाली औषधियों से ही संतोष करता था। कालान्तर में दवाइयों में काम आने वाले पदार्थों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती गयी। अब अनेक प्रकार के खनिज या सामुद्रिक पदार्थों का उपयोग होता है जैसे लोहा, चांदी, सोना, हीरा, पारा, गंधक, अभ्रक, मूंगा, मोती, शंख आदि। अफीम, शराब, संखिया भी खूब काम में आता है। दवाइयों के लिए अनेक पशुओं की चर्बी, रक्त और मांस का इस्तेमाल किया जाता है, इससे उन बेचारों को अकाल मृत्यु का सामना करना पड़ता है। हम लोग अपने इलाज के लिए डाक्टरों के परामर्श से दवाइयां या पौष्टिक पदार्थ लेते हैं, बहुधा हम यह जानते ही नहीं कि उन पदार्थों वाली शीशियों या डिब्बों में किसी प्राणी के रक्त आदि का मिश्रण है और हम कितने पशुओं की हत्या के लिए उत्तरदायी हैं।

औषधियों के आविष्कार में कितनी हिंसा होती है? यदि इस पर विचार करें तो चिकित्सा का वीभत्स रूप सामने आयेगा। स्वस्थ पशुओं पर तरह-तरह के प्रयोग किये जाते हैं। उन्हें प्रतिकूल परिस्थितियों में रख कर देखा जाता है कि किस दशा में उनका स्वास्थ्य कितना बिगड़ता है, किस हद पर जाकर उनकी मृत्यु होती है। पशुओं को दवाइयों से रोगी बना कर उन्हें एक-एक दवाई

देकर मालूम किया जाता है कि अमुक औषधि का उन पर क्या प्रभाव पड़ता है, कितने समय में उनका रोग जाता है, या रोग न जाकर उनके प्राण ही चले जाते हैं। ऐसे प्रयोगों के आधार पर हमारे शरीर-विज्ञान-वेत्ता यह निष्कर्ष निकालते हैं कि अमुक औषधि अमुक रोग वाले आदमी के लिए हितकर होने की सम्भावना है। इस प्रकार हमारे औषधि-विज्ञान की प्रयोगशालाएं नित्य लाखों प्राणियों की जान लेती हैं, अथवा जो उससे भी अधिक चिन्तनीय हैं — उन्हें जान बूझ कर तरह-तरह के कष्ट देकर सताया जाता है तथा उन्हें तड़प-तड़प कर मरने के लिए मजबूर कर दिया जाता है।

3.7.2 बंदरों का क्रूर व्यापार

आधुनिक औषधिशास्त्र ने पशुओं का हिंसक व्यापार खूब बढ़ा दिया है। उदाहरण के लिए भारत से अमरीका को बंदरों का बहुत निर्यात हो रहा है। ये वहां चीर-फाड़ के लिए भेजे जाते हैं। इन पर क्रूरता या निर्दयता पूर्वक तरह-तरह के प्रयोग होते हैं और ये घोर कष्ट सह कर बुरी तरह मरते हैं। अनुमान है कि बन्दरों के निर्यात का व्यवसाय पर्याप्त लाभप्रद है और इससे व्यापारियों अथवा सरकार को करोड़ों रुपये वार्षिक आय होती है। फिर भी क्या सर्वभूतहितेरता: के अनुयायी, आध्यात्मिक संस्कृति के इस पावन देश में पैसा ही हमारे व्यापार का आधार रहना चाहिए? ऐसा व्यापार अहिंसात्मक भावना रखने वाले भारत के लिए कलंक है। अगर यह सिद्ध भी हो जाए कि इस तरह की चीर-फाड़ से हम मनुष्य-जाति की पीड़ा को कम कर सकते हैं, तो भी निम्न श्रेणियों के प्राणियों पर ऐसा अत्याचार करना सरासर अन्याय है। और चीर-फाड़ में जिस अमानुषिकता से काम लेना पड़ता है उसे कोई महान् उद्देश्य तो नहीं कहा जा सकता। मनुष्य-जाति का उद्देश्य तो यह होना चाहिये कि वह दया-धर्म को कभी न छोड़ें, फिर भले ही उसके कारण उसे कितना ही दु:ख सहना पड़े, या वह दु:ख बढ़ भी जाए! (नोट-पशुओं पर क्रूरता के अध्याय में इसपर विस्तृत चर्चा की गई है।)

3.7.3 अहिंसा के लिए प्राकृतिक जीवन

यदि हम औषधियों के सम्बन्ध में होने वाली विकराल हिंसा से बचना चाहते हैं तो ऐसे जीवन की अपेक्षा है जिससे औषधियों की आवश्यकता ही न रहे। यह कहा जा सकता है कि आवश्यक औषधियां पर ऐसी औषधियां न लें जिनमें पशुओं का रक्त, मांस या चर्बी आदि हो। यह बहुत व्यवहारिक नहीं है। प्रथम तो जो आदमी औषधि लेता है, उसे अवश्य ही लोगों से सुनकर या विज्ञापनों से प्रभावित होकर यह विश्वास होगा कि अमुक औषधि से मुझे लाभ होगा, तो वह उसका जांच करने तो नहीं बैठेगा, और वह पूरी जांच कर ही नहीं सकता कि उस औषधि में जीव-रक्त आदि है या नहीं। फिर, जिस औषधि में रक्त आदि नहीं है, उसके आविष्कार में अनेक हिंसक प्रयोग भी नहीं किये गये हैं, इसका निश्चय कैसे होगा। अस्तु, औषधियों के लिए प्रत्यक्ष तथा परोक्ष रूप से होने वाली हिंसा से बचने का यथेष्ट उपाय यही है कि जड़ी-बूटियों को छोड़ कर, औषधि मात्र से बचा जाए।

औषधियों से बचने की बात का यह अर्थ नहीं कि आदमी बीमार पड़े रहें और उनका इलाज न हो। हमारा कहना यह है कि यदि संभव हो तो अहिंसक जीवन शैली के द्वारा यथा-सम्भव योग-ध्यान, जड़ी-बूटियां और प्राकृतिक साधनों — जल, वायु, मिट्टी और धूप का ही आश्रय लें, अर्थात् प्राकृतिक चिकित्सा को अपनायें। प्राकृतिक चिकित्सा के साथ प्राकृतिक जीवन का समावेश हो ही जाता है।

3.8 अहिंसा और उद्योग-धंधे, व्यापार और विज्ञान

3.8.1 उद्योग-धंधे

प्रारम्भ में मनुष्य की आवश्यकताएं कम थीं। आदमी प्रकृतिप्रदत्त पदार्थों से, उन पर विशेष क्रिया किये बिना ही अपना काम चला लेता था। क्रमश: मनुष्य की भौतिक आवश्यकताएं बढ़ीं और उसे प्रकृति से मिले पदार्थों से नयी-नयी वस्तुएं तैयार करने की बात सूझी। सीधे-सादे औजार बने। उन्हें आदमी अपने हाथ से ही चला लेता। जब आदमी पशुओं को पालने लगा तो औद्योगिक क्रियाओं में कुछ पशुओं की शक्ति का उपयोग करने लगा। आदमी उद्योग-धंधों का काम अपने-अपने घर में कर लेता था, या उनमें पास-पड़ोस के आदमियों की सहायता ले लेता था। इन उद्योग-धंधों का काम छोटे पैमाने पर होता था, इनका स्वरूप गृहोद्योग या ग्रामोद्योग का था। इनमें हिंसा बहुत कम होती थी।

पिछले दो सौ साल से भाप, गैस, बिजली आदि की शक्ति से चलने वाले कल-कारखानों की उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है। इनमें एक-एक जगह हजारों और एक-एक देश में करोड़ों मजदूर काम करते हैं। इससे मालिक और मजदूरों का सम्बन्ध बहुत विचारणीय हो गया है।

अनेक स्थानों में मजदूरों की दशा प्राचीन काल के दासों से भी अधिक सोचनीय और दयनीय है। दास तो मालिक के कुटुम्ब के साथ रहता था, और मालिक की प्रकृति या स्वभाव अच्छा होने की दशा में उसका स्नेह प्राप्त करता था। पर अब तो मालिक या पूंजीपति मजदूरों से कड़े से कड़ा काम करने पर भी जब उसे मजदूरी के बंधे हुए पैसे दे देता है तो वह समझता है कि मेरा कानूनी कर्त्तव्य पूरा हो गया।

3.8.1.1 शोषण और हिंसा—कल-कारखानों की केन्द्रित उत्पादन पद्धति में मालिक अधिकाधिक धनवान होते जाते हैं। कारखाने के मुनाफे पर उनका अधिकार होता है, और अगर वे मुनाफे का कुछ हिस्सा मजदूरों को दे देते हैं तो भी अधिकांश भाग तो वे स्वयं अपने पास ही रखते हैं। यह इसी से स्पष्ट हो जाता है कि वे बड़े-बड़े विशाल भवनों में रहते हैं, और उनकी विलासिता, शौक और मनोरंजन के साधन उत्तरोत्तर बढ़ते जाते हैं, जब कि मजदूर जन्म-भर जैसे-तैसे रहते हैं और अपने लिए अच्छा मकान भी नहीं बना पाते। इस प्रकार मालिकों और मजदूरों के रहनसहन आदि में कितनी विषमता है! और मालिकों का बेहद मुनाफा कहां से आता है? मजदूरों को यथा-सम्भव कम मजदूरी देने, उनका भरसक शोषण करने, उनकी शक्ति और सामर्थ्य का और उनकी गरीबी का अनुचित लाभ उठाने से चाहे वह कानून सम्मत ही हों।

3.8.1.2 साम्राज्यवाद और बेकारी से होनेवाली हिंसा—यदि कल कारखानों के सब मजदूरों के हित की उचित व्यवस्था कर दी जाए तो इस प्रकार के उत्पादन से एक अन्य हिंसा, और बहुत बड़ी हिंसा तो होती ही रहेगी। इन कल-कारखानों में जितनी वृद्धि और विकास होता है, उतनी ही बेकारी बढ़ती है। यह कहा जा सकता है कि बेकारों को दूसरा काम दे दिया जाए। पर अनुभव बतलाता है कि यह बात विशेष व्यवहारिक नहीं है। यदि एक देश सब आदमियों को यंत्रोद्योगों में लगा दे तो शीघ्र ही ऐसी अवस्था आ जाती है जब उनसे तैयार होने वाले माल के लिए बाजार ढूंढ़ने और उन्हें स्थायी रूप से अपने लिए सुरक्षित करने के वास्ते साम्राज्यवादी होना पड़ता है। यह स्वयं में एक संगठित हिंसा है, क्योंकि इसके कारण दूसरे देशों से द्वेष उत्पन्न होता है। यदि हम विनाशकारी साम्राज्यवादी नीति को नहीं अपनाते तो यंत्रोद्योग से बेकारी का अधिकाधिक बढ़ना अनिवार्य है, अश्वयम्भावी है। और, जो लोग बेकार रहते हैं, वे भूखो मरते क्या न करेंगे—चोरी, छल-कपट, धोखे-बाजी, भिक्षा, हत्या आदि। जो लोग इन दूषित उपायों को काम में नहीं लाते या नहीं ला सकते उन्हें आत्म-हत्या का मार्ग अपनाना होगा, अथवा क्षुधा-पीड़ित अवस्था में तिल-तिल करके मरने की तैयारी करनी होगी। इससे स्पष्ट है कि बड़े उद्योग-धंधों में कितनी हिंसा होती है।

3.8.1.3 स्वतंत्रता का ह्रास—कारखानों में एक भयंकर बुराई और भी है। इनमें वस्तुओं का उत्पादन भले ही अधिक हो, मनुष्यों का और मानवता का ह्रास हो जाता है। आदमी यंत्र में काम करते-करते चेतन प्राणी न रहकर यंत्र के एक पुर्जे के समान जड़ हो जाता है। उसे सृजन या रचना का गौरव और आनन्द नहीं रहता। उसकी स्वतंत्रता समाप्त हो जाती है। उसे यंत्र के साथ-साथ चलना पड़ता है; यंत्र जब जैसी हरकत करने की मांग करता है, आदमी को उसी समय वैसी हरकत करनी पड़ती है। जब तक यंत्र काम करे आदमी को भी काम करना होगा; उसे अवकाश नहीं मिल सकता, चाहे उसे इसकी कितनी ही जरूरत क्यों न हो। यंत्र के बंद होने पर ही आदमी को छुट्टी मिल सकती है। इस प्रकार आदमी की स्वतंत्रता समाप्त हो जाती है।

3.8.1.4 ग्रमोद्योगों और लघु उद्योगों की आवश्यकता—इन सब दोषों से बचने के लिए जरूरी है कि यंत्रोद्योगों का उपयोग कम से कम हो। वे उन्हीं आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए रहें जो लघु उद्योगों से पूरी नहीं हो सकतीं, और साथ ही जो सर्वसाधारण के दैनिक जीवन के लिए अनिवार्य हों। रोजमर्रा की समस्त साधारण मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति ग्रामोद्योग ही करें, जिनमें बेकारी तथा उसके कारण होने वाली विविध हिंसा का खतरा न हो और सब लोगों को आजीविका मिले।

ग्रामोद्योग में एक बात और भी है। उनमें जीव-हिंसा बहुत ही कम होती है। उदाहरण के तौर पर आटा पीसने की बात लें। यदि यह काम हाथ-चक्की से किया जाए तो हिंसा बहुत कम होने की सम्भावना है। पीसने वाला एक-एक मुट्ठी अनाज चक्की में डालता है, अगर उस अनाज में जीव-जन्तु होंगे तो सहज ही मालूम हो जायेंगे। इसके विपरीत, आटा पीसने की ऐसी चक्की जो बिजली या तेल आदि से चलती है इसमें अनाज की बोरी एक साथ खाली कर दी जाती है, और एक के बाद दूसरी बोरी का अनाज डालते रहते हैं।

वर्तमान अवस्था में लोगों ने अपनी आवश्यकताएं बहुत बढ़ा रखी हैं। वे अपने फैशन, मौज, शौक आदि के लिए कल-कारखानों में बनी कितनी ही ऐसी चीजें काम में लाते हैं, जिनके बिना साधारणतः दैनिक जीवन में कोई बाधा नहीं होती। स्पष्ट है कि ऐसी वस्तुओं को काम में लाना हिंसक धन्धों को प्रोत्साहन देना है, जो अमानवीय है। अहिंसा-प्रेमियों के लिए यह

आवश्यक है कि ऐसे मौज-शौक को कम करें, संयम और सादगी का जीवन व्यतीत करें। मानवता के विकास के लिए यह करना आवश्यकता है।

3.8.2 व्यापार

आजकल व्यापार पहले की अपेक्षा बहुत बढ़ा हुआ है तथा मानव जीवन में उसका विशेष स्थान है। यहां हमें यह विचार करना है कि व्यापार में अहिंसा का ध्यान कहां तक रखा जा सकता है, मनुष्य ने इसमें पहले की अपेक्षा कितनी प्रगति की है, इसमें क्या कमी है, और उसमें किस प्रकार तथा क्या सुधार होना चाहिए।

3.8.2.1 व्यापार में हिंसा और अहिंसा—सामाजिक जीवन अहिंसा-मय होने के लिए एक प्रमुख आवश्यकता यह है कि व्यापार अहिंसक हो। व्यापार जितना अधिक अहिंसक तरीकों से होगा, उतना ही वह समाज को अहिंसक बनाने में सहायक होगा। यदि व्यापारी अपनी वस्तुएं दूसरों को बेचने में अपने मुनाफे का लक्ष्य नहीं रखते, वरन् यह विचार करते हैं कि दूसरों को उन वस्तुओं के अभाव से कष्ट है, और उस कष्ट को दूर करना हमारा कर्तव्य है, चाहे ऐसा करने में हमें एक सीमा तक हानि और असुविधा ही क्यों न हो—अर्थात् यदि व्यापार प्रेम-भाव से, सेवा की दृष्टि से, त्याग-पूर्वक करते हैं तो यह व्यापार अहिंसक है और समाज में अहिंसा बढ़ाने वाला है। इसके विपरीत यदि व्यापार में मुख्य लक्ष्य स्वार्थ-सिद्धि या मुनाफाखोरी है तो यह दूसरों के अभावों और कष्टों से अनुचित लाभ उठाता है। अकाल या दुर्भिक्ष और बाढ़-ग्रस्त क्षेत्रों की भूखी जनता में अपना अनाज मंहगा बेचना, अथवा लोगों में युद्ध, विलासिता, शौकीनी या नशे के पदार्थ बेचना और उनका प्रचार करना, जबकि यह मालूम है कि इन पदार्थों के उपयोग से उनका कोई हित न होकर हानि ही होगी, अथवा अपनी चीजें सस्ते भाव से बेचकर दूसरों के उद्योग-धंधे चौपट करना, जिससे वे हमारे आश्रित हो जायं, और बाद में महंगे भाव से भी हमारी चीजें खरीदने के बाध य हों—इस प्रकार का हमारा व्यापार अनैतिक तथा हिंसक है।

3.8.2.2 पशुओं का क्रूर व्यापार—बहुत से व्यक्ति ऐसे होते हैं कि वे अपने आप को अहिंसा-प्रेमी मानते हैं, समाज में भी वे अहिंसा-प्रेमी समझे जाते हैं। किन्तु ये लोग अपने राजमर्रा के विविध कार्यों में अहिंसा-व्रत का ध्यान नहीं रखते। खासकर व्यापार में तो अहिंसा-नीति रखने में ये अपनी असमर्थता स्पष्ट स्वीकार कर लेते हैं। प्रायः कहा जाता है कि व्यापार तो व्यापार है, उसमें धर्म के सिद्धान्त का पालन नहीं हो सकता। इस प्रकार अनेक जो 'अहिंसा परमो धर्मः' की रट लगाया करते हैं, उन पशुओं के बेचने में कुछ संकोच नहीं करते, जिनका मारा जाना निश्चित और स्पष्ट है। गाय, बैल, बकरी आदि को कसाइयों के हाथ बेचने में अनेक आदमियों को कोई परहेज नहीं होता। अण्डा मछलियों तथा विविध पक्षियों और बंदरों का व्यापार काफी बड़े पैमाने में होता है, और यह सब केवल मुनाफे के लिए। क्योंकि इस व्यापार से सरकार को भी आमदनी होती है, इसलिए वह भी इसमें बाधक नहीं होती, वरन् अनेक दशाओं में वह इसे प्रोत्साहन ही देती है।

यदि इस दृष्टि से विचार करें, तो साधारणतया यही कहा जाएगा कि व्यापार में बहुत गलत व्यवहार समाविष्ट है, इसमें हिंसा की भरमार है। अहिंसक व्यापार में आदमी बराबर सतर्क रहेगा कि जिस वस्तु का मैं व्यापार करता हूं, उसकी समाज को आवश्यकता है। वह समाज की मांग होने से ही किसी वस्तु के व्यापार को नहीं करने लगेगा। वह सोचेगा कि यह वस्तु वास्तव में समाज के लिए हितकारी है। इस प्रकार युद्ध-सामग्री, मादक पदार्थों, विलासिता या शौकीन की वस्तुओं के व्यापार का निषिद्ध होना स्पष्ट है। जनदर्शन में ऐसे व्यवसायियों की सूचि दी गई है जिनमें हिंसा के आधिक्य के कारण उन्हें प्रतिबंधित किया गया है।

3.8.3 विज्ञान

विज्ञान का क्षेत्र अनन्त है। इसके मुख्य तीन भेद किये जा सकते हैं—भौतिक, मानसिक और आध्यात्मिक। साधारण तौर से विज्ञान से भौतिक विज्ञान का ही आशय लिया जाता है, तथा इसे ही महत्व दिया जाता है।

3.8.3.1 विज्ञान की दीर्घकालीन परम्परा—भाप आदि शक्तियों का विशेष उपयोग तो सत्रहवीं-अठारहवीं शताब्दी से ही होने लगा है। उससे पहले मनुष्य जो भी काम करता था—जमीन जोतना, पानी निकालना, खेती-बाड़ी, पशुपालन, बुनाई, तेल निकालना, गुड़ बनाना, माल ढ़ोना, यात्रा आदि—वे सब मनुष्य या पशु की शारीरिक शक्ति के द्वारा ही किये जाते थे। प्राकृतिक शक्ति—जैसे लकड़ी जला कर प्राप्त की गयी शक्ति—खाना बनाने, गरम करने, या धातुओं के औजार या बर्तन आदि बनाने में ही काम में लायी जाती थी। पर उस दशा में भी आदमी अपनी बुद्धि का उपयोग करता था। दो-ढ़ाई सौ साल से मनुष्य या पशु की शक्ति का उपयोग कम होकर, भाप, बिजली आदि प्राकृतिक शक्तियों का उपयोग अधिकाधिक हो रहा है। और अब

हमारी पीढ़ी में तो अणु-शक्ति के प्रयोग होने लग गये हैं। यह शक्ति इतनी अधिक प्रचण्ड है कि इस युग को अणु-युग का नाम दे दिया गया है।

3.8.3.2 विज्ञान का सदुपयोग और दुरुपयोग— सदुपयोग करने वालों के हाथों में गुण होते हैं, जब कि गुणहीनों अर्थात् दुरुपयोग करने वालों वे दोष बन जाते हैं। विज्ञान एक साधन है, इसकी शक्ति से कैसा कार्य होता है— अच्छा या बुरा, अहिंसक या हिंसक— यह इसके उपयोग पर निर्भर है। आदमी इसका उपयोग अच्छे कार्य में भी कर सकता है, और बुरे कार्य में भी। इसलिए यह कहने की अपेक्षा कि विज्ञान ने यह कार्य किया, यह कहना ज्यादा ठीक है कि विज्ञान द्वारा मनुष्य ने यह कार्य किया। पर व्यवहार में इतना सूक्ष्म विचार नहीं किया जाता।

वैज्ञानिक आविष्कार हिंसा को भी बढ़ाने वाले हो सकते हैं और अहिंसा को भी। अहिंसा को बढ़ाने वाले आविष्कारों का एक उदाहरण कृषि है। ज्यों-ज्यों खाद्य पदार्थों की उपज बढ़ाने वाले अनुसंधान होते जायंगे, अथवा नये पदार्थों को भोजन के रूप में उपयोग किये जाने के प्रयोगों में सफलता मिलेगी, मनुष्य का मांसाहार उत्तरोत्तर कम होता जाएगा। इससे स्पष्ट है कि विज्ञान ने मनुष्य को अहिंसक बनने की दिशा में कितनी सहायता दी है, और दे सकता है।

प्राचीन काल में आदमी सर्वोदय की बात कहता था तो वह अपने पास के, अपने गांव-खेड़े के थोड़े से आदमियों को ही अपनी दुनियां समझता था। दूर-दूर के आदमियों से वह इच्छा रखते हुए भी संबंध स्थापित नहीं कर सकता था। उस समय दुनिया अनेक भागों में विभक्त थी और एक भाग के निवासियों को दूसरे भाग के निवासियों के सुख-दुःख का कुछ पता नहीं होता था। अब विज्ञान की सहायता से हम हजारों मील दूर रहने वालों का हाल सहज ही जान सकते हैं और अनावृष्टि, बाढ़, अग्निकांड, भूकम्प आदि के अवसर पर शीघ्र ही यथेष्ट सहायता पहुंचा सकते हैं।

इससे स्पष्ट है कि विज्ञान सर्वोदय की भावना का प्रचार करने में तथा इसे कार्य-रूप में परिणित करने में कितना सहायक हुआ है। आरम्भ में जब 'सर्वे सुखिनः भवन्तु', 'सर्वभूत हितेरताः', या 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की बात कही गयी थी, मनुष्य यह नहीं जानता था कि पृथ्वी वास्तव में कितनी बड़ी है, आदमी तथा अन्य प्राणी कहां-कहां रहते हैं। अब विज्ञान की उन्नति से, यातायात आदि के साधनों की वृद्धि से, यह पहले की अपेक्षा अधिक सम्भव हो सका है और आगे अधिकाधिक हो सकेगा।

विज्ञान एक एक साधन है इसका सदुपयोग होने पर इससे अहिंसक कार्यों में सहायता मिलती है, तो इसके दुरुपयोग होने की दशा में यह बहुत अनिष्टकारी या हिंसक भी हो सकता है। पिछले समय में विज्ञान से अनेक ऐसे यंत्रों का आविष्कार हुआ है जिनसे उत्पादक कार्यों में मनुष्य को शारीरिक श्रम कम करना पड़ता है। ये यंत्र कुछ थोड़े से व्यक्तियों के अधिकार में होते हैं। वे लोग इनका उपयोग अपने स्वार्थ सिद्धि तथा दूसरों के शोषण में करते हैं। इस प्रकार ये एक बड़ी पूंजी द्वारा थोड़े से आदमियों के सहयोग से कल-कारखाना चलाकर हजारों आदमियों को बेकार कर देता है। ये बेकार लोग चोरी करने, भीख मांगने, छल-फरेब करने आदि के लिए मजबूर होते हैं। इस प्रकार विज्ञान बहुत बड़ी हिंसा का साधन होता है।

ज्यों-ज्यों विज्ञान की उन्नति हुई, युद्ध पहले से अधिक, विकराल और व्यापक होने लगे। पहले प्रत्येक युद्ध की जगह निध ारित होती थी, जिसे युद्ध-भूमि या रणक्षेत्र कहा जाता था। उससे दूर के लोगों को युद्ध में होने वाली हिंसा का शिकार नहीं होना पड़ता था। अब तो लड़ने वाले दोनों पक्षों की एक-दूसरे के पूरे के पूरे क्षेत्र पर नजर रहती है। बालक, स्त्री, रोगी या बूढ़ा कोई भी सुरक्षित नहीं रहता। बहुधा प्रत्येक पक्ष में कई-कई देश होते हैं, ऐसी दशा में रण-क्षेत्र बहुत ही विस्तृत हो जाता है। नये-नये शस्त्रास्त्रों ने युद्ध की भीषणता को बेहद बढ़ा दिया है। अणु-बम और उद्जन-बम से होने वाली संहार-लीला से तो ऐसा मालूम होता है कि मानो विज्ञान मनुष्य का अन्त करने, सृष्टि का विनाश करने पर ही उतारू है। आदमी विज्ञान द्वारा प्राप्त महत्वूर्ण शक्तियों से अपना कैसा अहित कर रहा है, इससे कौन सहृदय दुखी न होगा! अनेक वैज्ञानिक भी इस पर गम्भीरता से सोचने के लिए बाध य हो गये हैं। श्री सी.वी. रमण ने कहा है कि 'यदि विज्ञान के प्रसार और उसके आविष्कारों से मनुष्य के हृदय की विशालता, उच्चता और नैतिकता नहीं बढ़ती तो फिर उनका क्या मूल्य है। यदि विज्ञान यह न कर सके तो बेहतर होगा कि सारी प्रयोगशालाओं को बन्द कर दिया जाए।'

3.8.3.3 अहिंसा की विशेष आवश्यकता— अहिंसा की आवश्यकता तो मनुष्य को हमेशा रही है, पर विज्ञान के इस घातक रूप के प्रकट होने पर अब वह आवश्यकता और भी अधिक अनुभव की जा रही है। डा. वासुदेवशरण अग्रवाल ने लिखा है कि 'आज छोटे-बड़े अनेक वैज्ञानिक सत्यों के आविष्कार से मानव-जीवन को सुख और स्वास्थय की अनेक सुविध

ााएं मिली हैं, किन्तु अहिंसा के एक नियम की स्वीकृति के बिना हम सब कहां हैं, मानव–जाति का सुख कहां है, मनुष्यों के मन की शांति कहां है, और कहां है राष्ट्र–प्रेम और मातृ–प्रेम जिसके अभाव में हर एक का जीवन नीरस बना हुआ है! विज्ञान के स्वसंचालित यन्त्र जिस वेग से संहार की वृष्टि कर सकते हैं, उससे कहीं अधिक शक्तिशाली अहिंसा के स्वर हैं। वे जिस क्षण महान राष्ट्रों के कंठ से निकलेंगे, संसार भर के मानव का मन आश्वास्त हो जाएगा।'

3.8.3.4 भौतिक परमाणु बनाम चैतन्य परमाणु— अणु–बम का आजकल लोगों के मन पर बहुत आतंक है, तथापि यह विचार करना चहिए कि वह आखिर तो एक जड़ पदार्थ है, चैतन्य शक्ति के सामने कब तक डटेगा। अणु–बम का बनाने वाला तो मनुष्य ही है, क्या मनुष्य उसका नियन्त्र नहीं कर सकेगा? विनोबा के शब्दों में–'एटम ने यह सिद्ध कर दिया कि अणु में ऐसी शक्ति है कि वह संहार कर सकती है। तो फिर हमें यह समझना है कि एक साधारण भौतिक परमाणु में इतनी शक्ति है तो चैतन्य–परमाणु में, ज्ञान–परमाणु में कितनी शक्ति होगी।'

3.9 आध्यात्म और विज्ञान का समन्वय

पहले कहा गया है कि विज्ञान के मुख्य तीन भेद हैं। इस समय भौतिक विज्ञान पर बहुत जोर दिया जाता है। परन्तु आध यात्मिक विज्ञान की ओर अपेक्षाकृत बहुत कम ध्यान दिया जाता है। इस प्रकार विज्ञान की जो उन्नति हुई है, वह एकांगी है। शारीरिक और मानसिक आवश्यकताओं की पूर्ति का भरसक प्रयत्न किया जा रहा है। परन्तु मनुष्य केवल शरीर या मन ही नहीं है। उसका एक अंग आत्मा भी है, और वह इतना महत्वपूर्ण है कि उसकी तुलना में शरीर और मन का स्थान ऐसा ही है, जैसा शरीर की तुलना में कपड़े का। कपड़े को हम अनावश्यक नहीं कहते, पर वह शरीर के लिए है। इसी प्रकार शरीर और मन में दोनों आत्मा के लिए हैं।

आत्मा को आध्यात्मिक विज्ञान की जरूरत है जिससे मनुष्य में आत्मीयता की भावना बढ़े। आध्यात्मिक विज्ञान मनुष्य को अपनी भौतिक आवश्यकताओं पर नियन्त्रण करना, दूसरों की सेवा सहायता करना, उनके लिए अपने सुख सुविधाओं का त्याग करना सिखाता है। इससे आदमी मिलजुल कर, प्रेम से, शान्ति और सहयोग से रह सकते हैं। अस्तु, भौतिक विज्ञान त्याज्य नहीं है, पर उसके साथ आध्यात्मिक विज्ञान या आत्मज्ञान का मेल होगा तभी मनुष्य की हिंसक प्रवृत्ति का नियन्त्रण होकर अहिंसा की दशा में यथेष्ट प्रगति होगी। आचार्य महाप्रज्ञ श्री बनोवा से सहमति प्रकट करते हुए– आध्यात्मिक–वैज्ञानिक व्यक्तित्व निर्माण की वकालत करते हैं।

3.10 अहिंसा और शिक्षा

3.10.1 अहिंसा के शिक्षण की आवश्यकता

अभी तक अहिंसा के सम्बन्ध में शोधन, शिक्षण और प्रयोग बहुत कम ही हुए हैं। हिंसा के सम्बन्ध में मनुष्य ने जितना परिश्रम किया और कष्ट उठाया है, उसकी तुलना में अहिंसा की ओर बहुत ही कम ध्यान दिया गया है। फिर भी यह बहुत यशस्वी हुई। स्पष्ट है कि अहिंसा का शोधन, शिक्षण, संगठन आदि बढ़ने पर इसकी कल्याणकारी शक्ति और भी अधिक चमत्कार दिखायेगी।

इस विषय में गांधीजी का मत है "अहिंसा में तीव्र कार्यसाधक शक्ति भरी हुई है। इसमें जो अमोघ शक्ति है, उसकी अभी पूरी खोज नहीं हुई है। 'अहिंसा के समीप सारे बैर–द्वेष शान्त हो जाते हैं'— यह सूत्र शास्त्रों का प्रलाप नहीं है, बल्कि ऋषियों का अनुभव–वाक्य है। जाने–अनजाने, प्रकृति की प्रेरणा से, सब प्राणियों ने एक–दूसरे के लिए कष्ट उठाने का अर्थ पहचाना है और उसके आचरण द्वारा संसार को निभाया है। तथापि इस शक्ति का संपूर्ण विकास और सब कार्यों और प्रसंगों में इसके प्रयोग के मार्ग का अभिज्ञानपूर्वक शोधन–संगठन नहीं हुआ है। हिंसा के मार्गों के शोधन और संगठन करने का मनुष्य ने जितना दीर्घ उद्योग किया है और उसके फलस्वरूप शस्त्र बनाने में जो सफलता पायी है; उतना यदि वह अहिंसा की शक्ति के शोधन और संगठन के लिए करे, तो मनुष्य–जाति के दु:खों के निवारणार्थ यह एक अनमोल, अचूक और परिणाम में उभय पक्ष का कल्याण करने वाला साधन सिद्ध होगा।"

जिस श्रद्धा और उद्योग से वैज्ञानिक प्रकृति की शक्तियों की खोज करते हैं और उसके नियमों को विविध प्रकार से काम में लाने का प्रयत्न करते हैं वैसी ही श्रद्धा और उद्योग से अहिंसा की शक्ति की खोज करने की और उसके नियमों को काम में लाने का प्रयत्न करने की आवश्कता है। अहिंसा की शिक्षा और हिंसा की शिक्षा में जमीन आसमान का अन्तर है। गांधीजी ने कहा है 'जैसे हिंसा की तालीम में मारना सीखना जरूरी है, उसी तरह अहिंसा की तालीम में मरना सीखना पड़ता है। हिंसा में भय

से मुक्ति नहीं मिलती, किन्तु भय से बचने का इलाज ढूंढ़ने का प्रयत्न रहता है। अहिंसा में भय को स्थान ही नहीं। भयमुक्त होने के लिए अहिंसा के उपासक को उच्च कोटि की त्याग-वृत्ति विकसित करनी चाहिए। जिसने सब प्रकार के भय को नहीं जीता, वह पूर्ण अहिंसा का पालन नहीं कर सकता। इसलिए अहिंसा का पुजारी सब भयों को जीत लेता है।

3.10.2 अहिंसा के शिक्षण में शारीरिक कार्य अनिवार्य

सैनिक शिक्षा से आदमी दूसरों को मारने की 'कला' सीखते हैं। यह शिक्षा एकदम या बिना प्रयास के नहीं मिल जाती। इस के लिए महीनों और वर्षों का समय लगता है। हमें जानना चाहिए कि अहिंसा का भी शिक्षण कुछ भाषणों, लेखों या वाद-विवाद के जबानी जमा-खर्च से नहीं हो सकता। यद्यपि इस बात पर बहुत से लोगों को जल्दी विश्वास न हो, तथापि विचार करने पर यह स्पष्ट हो जाएगा कि सैनिक शिक्षण से मिलने वाले सब लाभ— आज्ञापालन की आदत, आत्म-सम्मान, आत्म-त्याग, दृढ़ इच्छा-शक्ति, दूसरों के प्रति एकता की भावना, कठिनाइयों को सहन करने की शक्ति, व्यवस्था और सहयोग की भावना, साहस, दूसरों के साथ समरस होने की प्रवृति आदि—रचनात्मक कार्यों से मिल सकते हैं, जब इन्हें सोच समझ कर, सहयोग-पूर्वक स्वभावत: किया जाता है। इसलिए अहिंसा के शिक्षण में शारीरिक कार्य का महत्व निर्विवाद है। कार्य जितना अधिक किया जाएगा, सत्याग्रह की उतनी ही सम्भावना हो जाएगी।'

रचात्मक कार्य, देश-काल के अनुसार भिन्न-भिन्न स्थानों में भिन्न-भिन्न हो सकते हैं। भारत की वर्तमान अवस्था में यहां ये कार्य निम्नलिखित माने गये— 1. साम्प्रदायिक एकता, 2. अस्पृश्यता निवारण, 3. जाति-भेद निराकरण, 4. नशा-बन्दी, 5. खादी और दूसरे ग्रामोद्योग, 6. गांव-सफाई, 7. मूल्यपरक शिक्षा, 8. स्त्री के लिए पुरुषों की बराबरी के हक, और समाज में स्त्री-पुरुष की बराबरी की प्रतिष्ठा, 9. आरोग्य और स्वच्छता, 10. देश की भाषाओं का विकास, 11. प्रान्तीय संकीर्णता का निवारण, 12. हिन्दुस्तानी का राष्ट्र-भाषा के तौर पर प्रचार, 13. आर्थिक समानता, 14. खेती की तरक्की, 15. मजदूर-संगठन, 16, आदिम जातियों की सेवा, 17. विद्यार्थी-संगठन, 18. कुष्ट रोगियों की सेवा, 19. संकट निवारण और दु:खियों की सेवा, 20. गौ-सेवा, 21. प्राकृतिक चिकित्सा आदि।

3.10.3 अहिंसा की शिक्षा कौन देगा?

अहिंसा की शिक्षा वह व्यक्ति दे सकेगा जो स्वयं अहिंसा-प्रेमी हो, जिसके मन में अहिंसा-प्रचार की धुन हो, जो इसके लिए बेचैन हो, जिसने इसे अपने जीवन का लक्ष्य बना लिया है, और जो अपना दैनिक व्यवहार और आचरण अधिक-से- अधिक अहिंसामय रखता हो। ऐसे व्यक्ति अपने दैनिक जीवन-व्यवहार में अहिंसा का आदर्श उपस्थित करके अपने पड़ोसी को प्रभावित करें। उपदेश से दृष्टान्त कार्यकारी होता है। अहिंसा के श्रद्धालुओं में भी साधुओं और त्यागियों का उत्तरदायित्व और भी अधिक है। वे तो अपने को अहिंसा और शान्ति का सिपाही मानें और जीवन के जिस क्षेत्र में उन्हें हिंसामयी विषमता दिखायी दे, उसको मिटाने के लिए होम दें।

3.11 अहिंसा और पर्यावरण

पृथ्वी एवं इसका पर्यावरण न केवल मनुष्य, वरन् प्राणी मात्र, वरस्पति जगत एवं अजीव जगत के साथ अन्योन्याश्रित रूप से जुड़ा है। विश्व की प्राचीनतम सभ्यता एवं संस्कृति के देश भारत में दिव्य द्रष्टा महर्षियों ने पर्यावरण के महत्व को अपनी दिव्य दृष्टि से जान लिया था एवं उनकी मनीषा ने स्वत: स्फूर्त्त अग्नि सूक्त, मरुत सूक्त, वात सूक्त, पर्जन्य आदि सैकड़ों सूक्तों का सृजन किया। पर्यावरण एवं जीव जगत के सम्बन्ध में भारतीय दर्शनों एवं परम्पराओं में महत्वपूर्ण उपयोगी सिद्धान्त और चिन्तन हमें प्राप्त हैं। इनके विस्मरण से कई समस्याएं उत्पन्न हुई हैं तथा मानव समाज भटकाव की स्थिति में पहुंच गया है। महर्षि द्वय चरक एवं सुश्रुत की आयुर्वेदिक संहिताओं तथा सम्पूर्ण परवर्ती साहित्य में इस सन्दर्भ में परामर्श एवं अत्यन्त उपयोगी मार्ग निर्देशिका सामग्री है।

मनुष्यता के बौद्धिक एवं वैज्ञानिक विकास के इतिहास का सिंहावलोकन स्पष्टत: दर्शाता है कि जिज्ञासा, आश्चर्य, प्रेक्षण, कल्पना, ज्ञान पिपासा, चिन्तन, मनन, प्रयोग रहस्यों तथा समस्याओं से जूझकर उनका हल खोजने की प्रवृत्ति, प्रकृति पर विजय पाने की अदम्य लालसा एवं प्रबल पुरुषार्थ शक्ति ने समस्त विश्व में विज्ञान की विविध शाखाओं को जन्म दिया। विशेषत: वर्तमान शताब्दी में तो मानो ज्ञान-विज्ञान का 'विस्फोट' ही हुआ है तथा इसके परिणाम स्वरूप मानव जीवन में विभिन्न प्रकार की सुविधाओं एवं भौतिक सुखों में अपूर्व वृद्धि हुई है। परन्तु बीसवीं शताब्दी अपने आप में अनोखी कही जा सकती है, क्योंकि

इसमें तीव्र विकास तो हुआ, किन्तु वहीं पर अधिकांश समस्याएं केवल एक देश या कुछ देशों तक ही सीमित नहीं रही, बल्कि उनका स्वरूप बहुआयामी व विश्वव्यापी रहा। इन्हीं समस्याओं में से ज्वलंत समस्या है 'पर्यावरण प्रदूषण'। किसी अच्छाई या भलाई के साथ कोई न कोई बुराई अवश्य जुड़ी होती है या जुड़ जाती है। पर्यावरण की अशुद्धि या प्राकृतिक प्रदूषण भी एक ऐसा ही विषय है, जो विज्ञान एवं तकनीकी विकास के साथ गहराई से जुड़ा है जिसके संभावित दुष्परिणामों से समस्त प्राणीजगत भयभीत है। संक्षेप में पर्यावरण की शुद्धि पर प्राणी जगत का अस्तित्व निर्भर करता है। इसलिए केन्द्रीय शासन एवं राज्य शासनों द्वारा पर्यावरण मंत्रालय खोले गये हैं। प्रयोगशालाओं की स्थापना और वैज्ञानिक एवं तकनीकी अधिकारियों की नियुक्तियां की गई हैं। आकाशवाणी, दूरदर्शन, समाचार पत्रों, पत्रिकाओं द्वारा पर्यावरणीय समस्याओं सम्बन्धी व्यापक प्रचार अभियान चलाया जा रहा है। विश्वविद्यालयों में राष्ट्रीय व क्षेत्रीय विद्वत् संगोष्ठियां आयोजित की जा रही हैं। संयुक्त राष्ट्रसंघ भी इस दिशा में सक्रिय है। पृथ्वी के सभी राष्ट्रों के शासनाध्यक्षों एवं वैज्ञानिकों का सन् 1992 में 'रियो द जनरियो' का 'पृथ्वी सम्मेलन' (वेनेजुएला में) इस समस्या के प्रति विश्वव्यापी चेतना एवं सभी प्रकार के राजनैतिक एवं आर्थिक आदि कलहों से ऊपर उठकर समग्र पृथ्वी के समूचे पर्यावरण के संरक्षण, सुधार एवं विकास की दिशा में नैष्ठिक (निष्ठा युक्त) प्रयासों का प्रतीक है।

पर्यावरण सम्बन्धी सभी समस्याओं की जड़ मनुष्य की वासनाओं, तृष्णाओं एवं ऐषणाओं में है। प्रत्येक मनुष्य अनन्तकाल तक जीवित रहकर अनन्त अनवरतसुख या आनन्द का उपभोग करना चाहता है। उसे शारीरिक सुख के लिए भोजन, वस्त्र और आवास की आवश्यकता होती है। इन्हें बढ़ाते रहने एवं अधिकाधिक उपभोग की उसकी स्वाभाविक प्रवृत्ति रहती है। मानव को उपभोग के ये सारे उपादान पृथ्वी एवं पर्यावरण (प्रकृति) से ही प्राप्त होते हैं। ''आवश्यकता ही अविष्कार ही जननी है''—इस उक्ति के आधार पर रंग-बिरंगे कपड़ों एवं फैशन के व्यामोह में मनुष्य अनेक कृत्रिम रंजक पदार्थों का निर्माण करता है और इसी के लिए विशालकाय उद्योग भी स्थापित किये जाते हैं। इन उद्योगों से प्रतिदिन टनों अग्राह्य एवं प्रदूषक पदार्थ प्रकृति में ठोस, द्रव या गैस के रूप में उत्सर्जित होते हैं। रंजक पदार्थ का यह उदाहरण तो प्रतीक मात्र है। वस्तुत: फैशन के नाम पर कई तरह के लेपों, उबटनों, तेल और सुगंधित पदार्थ का परिग्रह मनुष्य ने बढ़ा लिया है। मनुष्य की दूसरी प्रवृत्ति है—जिजीविषा। मृत्यु का भय। रोगों से बचने का प्रयत्न। इस क्षेत्र में प्राकृतिक सन्तुलित जीवन व्यतीत करने के स्थान पर उसने जीवित रहने के लिए कई औषधियों का आविष्कार कर लिया है। सारी पृथ्वी पर हजारों टनों में प्रतिवर्ष इनका निर्माण होता है। इस निर्माण प्रक्रिया में टनों त्याज्य एवं प्रदूषक मल उत्सर्जित होते हैं। राष्ट्र एवं राज्य की सुरक्षा के नाम पर सामूहिक सुरक्षा व्यवस्था का भी सृजन हो गया है। इसी के नाम पर लाखों टनों में विस्फोटकों, रासायनिक युद्ध सामग्रियों, वायुयानों व टेंकों आदि का निर्माण होता है। इनमें लगने वाली धातुओं एवं द्रव्यों के निर्माण हेतु अनेक छोटे-मोटे उद्योग अहर्निश अपरिमेय मात्रा में प्रदूषक द्रव्यों का निष्कासन करते रहते हैं। सारा मानव समाज राष्ट्रों, उपनिवेशों एवं राज्यों के खंडों में बंटा हुआ एक दूसरे से भयाक्रांत है एवं सुरक्षा और संरक्षण के नाम पर महती अर्थशक्ति का तो व्यय करता ही है, पर्यावरण प्रदूषण भी आनुषंगिक रूप में करता है। लोभ की वृत्ति, व्यापार एवं लाभ अर्जित करने के मूल में है। एक राष्ट्र या समाज, दूसरे राष्ट्र या समाज का शोषण करना चाहता है। उपयोगी एवं आवश्यक पदार्थों के उत्पादन का ज्ञान गुप्त रखकर, वस्तु विक्रय द्वारा अर्थ संचय करके अपने समाज या राष्ट्र को तथाकथित प्रगतिशील एवं उन्नत बनाना चाहता है। इस प्रक्रिया में स्वयं उत्पादक राष्ट्र में अनिवार्य एवं अपरिहार्य रूप में प्रदूषण होता है। क्रेता समाज या राष्ट्र में विक्रित वस्तुएं जैसे—कार, स्कूटर, वायुयान आदि भी न्यूनाधिक रूप में प्रदूषण उत्पन्न करते रहते हैं। दौड़-भाग एवं प्रतिस्पर्द्धा की समाज-व्यवस्था में तीव्रगामी वाहनों, रेलगाड़ियों, ट्रकों आदि की आवश्यकता बढ़ा दी है। इनसे सारी पृथ्वी पर लाखों टनों में प्रतिदिन कार्बनडाइआक्साइड, कार्बन मोनोऑक्साइड, गंधक, सीसा आदि उत्सर्जित होते हैं। आराम एवं विलासिता की पिपासाएं—मनुष्य आराम के लिए नरम गद्दे, फोम, स्पंज के उपकरण चाहता है। इसके साथ ही मनुष्य की सौन्दर्य प्रसाधन की भी आकांक्षा दिनानुदिन बढ़ती ही जा रही है। इन मांगों की पूर्ति के लिए इन वस्तुओं के उत्पादन हेतु कारखाने खुलते हैं।

3.11.1 कष्ट साहिष्णुता एवं तपवृत्ति की कमी—गांधीजी ने सुख एवं शान्ति के लिए आवश्यकताओं को कम करने का विचार प्रकट किया था, तथा स्वयं कष्ट सहकर दूसरों को सुख पहुंचाने की सीख दी थी। आधुनिक भौतिकवादी सभ्यता एवं विभिन्न पाश्चात्य सभ्यताओं एवं संस्कृतियों के प्रभाव वश, विशेषत: महावीर गौतम के देश भारत में कष्ट सहिष्णुता एवं तपवृत्ति विलीन होती जा रही है। हमें वातानुकूल चाहिये गर्मी में ठंडा कक्ष और ठंडा में गर्म। विद्युत उत्पादन का बहुत बड़ा भाप उद्योगों व यंत्रोपकरणों के संचालन के अतिरिक्त हमारी आराम व विलासिताओं की आवश्यकता पूर्ति में खप जाता है।

3.11.2 जनसंख्या वृद्धि—नैसर्गिक, आत्मारोपित ब्रह्मचर्य का अभाव तथा अशिक्षा के कारण जनसंख्या में तीव्र गति से अनियंत्रित वृद्धि हो रही है। इस बढ़ी हुई जनसंख्या की अन्न, वस्त्र एवं आवास जैसी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु समाज, राष्ट्र एवं शासन को उद्योग धंधे खोलने पड़ते हैं, जो पर्यावरण प्रदूषण के मूल कारण बनते हैं।

3.11.3 अन्नोत्पादन— जनता के खाद्यान्न की आपूर्ति हेतु अनेक कदम उठाये जाते हैं। अन्नोत्पादन की वृद्धि के लिए कई प्रकार के उर्वरकों व कीटनाशकों का प्रयोग करने हेतु अभियान चलाये जाते हैं। हरित क्रांति जैसी नीतियों का निर्माण किया जाता है। अधिक अन्न उपजाने के लिए विशाल उर्वरक सयंत्र स्थापित किए जाते हैं। हानिकारक कीटों के नाश के लिए सैकड़ों रासायनिक पदार्थों का उत्पादन करने के लिए बड़े-बड़े कारखाने लगाए जाते हैं, जो पर्यावरण को अनिवार्य रूप से प्रदूषित करते हैं।

अतः संक्षेप में कहा जा सकता है कि मनुष्य की तृष्णाओं, ऐषणाओं, वासनाओं, लोभ-वृत्ति, शारीरिक पुष्टि एवं सौन्दर्य वर्द्धन, रोगों से निवृत्ति, दीर्घजीवन की लालसा, त्वरा, सुरक्षा एवं संरक्षा की वृत्तियों आदि ने पर्यावरण सम्बन्धी समस्याओं को जन्म दिया है। पृथ्वी के अन्य सजीव किन्तु निरीह घटकों जैसे कि पशुओं, पक्षियों, वनस्पतियों ने इसमें योगदान कतई नहीं दिया है। ये तो प्रकृति के माध्यम से परमात्मा या पर ब्रह्मा के अनुशासन में रहते आ रहे हैं।

3.11.4 अहिंसक समाधान—मनुष्य की प्रतिभा एवं बुद्धि ही उसके शत्रु का रूप ग्रहण कर रही है। समस्याओं का निर्माता मनुष्य ही है एवं उसे ही इनका समाधान करना है। डॉ. शैलेन्द्र शेखर, ओरियंट पेपर मिल्स, अमलाई चिकित्सालय के चिकित्सक पर्यावरण संकट के लिए मनुष्य को उत्तरदायी ठहराते हुए कहते हैं कि हमारी (मनुष्य को) बुनियादी भूल थी कि हमने आदमी को स्वयं से प्रेम करना नहीं सिखाया। इसका सम्बन्ध पर्यावरण से है। जो व्यक्ति स्वयं से घृणा करता है, क्या उससे अपेक्षा की जा सकती है कि वह किसी और को प्रेम करता है, क्या उससे अपेक्षा की जा सकती है कि वह किसी और को प्रेम करेगा। जो स्वयं के प्रति क्रोध से भरा है, उसके दूसरों से प्रेम करने की कल्पना ही छोड़ देनी चाहिए। जो खुद को काटने-मारने को तैयार है वह दूसरे मनुष्यों को, अन्य प्राणियों को, पेड़-पौधों को कैसे छोड़ सकता है। स्वयं से घृणा करने वाला व्यक्ति समस्त अस्तित्व के प्रति घृणा और क्रोध से भर जाता है। समग्र रूप से मनोभाव रूप मानसिक प्रदूषण से वर्तमान मानव सभ्यता एवं प्रकृति व्यापक एवं गहन रूप से प्रभावित हुई है। मानव जीवन की सरलता-सहजता, सज्जनता, निष्कपटता, परदुःखकातरता, स्वावलम्बन, कर्त्तव्य-निष्ठा, श्रम-निष्ठा, परस्पर सहयोग, प्राणी मात्र के प्रति दया-करूणा का भाव आदि ऐसे सहज मानवीय गुण हैं, जो मनुष्य को अन्य प्राणियों की तुलना में श्रेष्ठता प्रदान करते हैं और जिनके सद्भाव में प्राकृतिक व्यवस्था सन्तुलित एवं मर्यादित चलती रहती है, किन्तु जब इन मानवीय गुणों का ह्रास होता है या इन गुणों का प्रतिपक्षी अन्य क्रोधादि—मोह, स्वार्थ आदि—के मनोभाव मानव जीवन को आक्रान्त करते हैं तब उससे न केवल व्यक्ति बल्कि समाज भी दुःखी होता है। इससे प्राकृतिक सन्तुलन भी अस्त-व्यस्त एवं ध्वस्त हो जाता है, जैसा कि वर्तमान में मनोविकृत सामाजिक-अव्यवस्था एवं प्राकृतिक असन्तुलन के दुष्परिणामों के रूप में हम अनुभूत कर रहे हैं। वस्तुतः इन सब विकृतियों के पीछे मानव जगत का मानसिक प्रदूषण उत्तरदायी है।

गांधीजी ने प्रकृति के नियम को याद दिलाते हुए हमें सावधान किया या कि जो व्यक्ति जिससे जितना ग्रहण करे उतना उसे वापस करना चाहिए, तभी व्यवस्था सन्तुलित रहती है; किन्तु क्रोधादि अशुभ मनोविकार, कर्त्तव्य विमुखता, स्वार्थी मनोवृत्ति, भ्रष्ट-आचरण, अवसरवादिता के रूप में अनार्जित आय को प्राप्त करने की भावना, पदलिप्सा, असीमित इन्द्रिय भोग एवं वासना के मनोविकारों से जब व्यक्ति एवं समाज पीड़ित होता है, तब वह प्रकृति के प्रति क्रूर एवं हिंसक होकर उसे प्रतिक्षण लेता ही लेता है, जिससे पर्यावरण एवं प्राकृतिक सन्तुलन भंग हो जाता है। अमर्यादित वन-विनाश, अनियंत्रित उत्खनन, जल-वायु, प्रदूषण आदि इसके ही क्रूर नमूने हैं; जिसके संभावित दुष्परिणामों से सभी भयभीत हैं।

3.12 सारांश

पर्यावरण शुद्धि हेतु यह आवश्यक है कि मानवीय मानसिक प्रदूषण को नियंत्रित, सयंमित एवं सन्तुलित कर उसे जनोपयोगी बनाया जाये। हम जानते हैं कि व्यक्ति एवं समाज की अशुभ प्रवृत्तियों, असदाचार, असंयम को रोकने में राम, कृष्ण, महावीर, बुद्ध, मोहम्मद, ईसा, जरस्थुस्त्र एवं उनके अनुयायी महर्षियों का महत्वपूर्ण योगदान रहा, जिन्होंने वैचारिक शुद्धता-शुभता से व्यक्ति सुधार द्वारा समाज सुधार का वैज्ञानिक प्रयोग किये हैं।

3.13 अभ्यास हेतु प्रश्न

निबन्धात्मक

1. अहिंसक जीवन शैली के प्रमुख घटकों का विवरण दें।
2. अहिंसक जीवन शैली हेतु अहिंसा की साधना क्या भूमिका निभा सकती है?
3. मांसाहार से मनुष्य किस प्रकार के दुष्परिणाम भोगता है?
4. मनुष्य हिंसक व्यवहार क्यों करता है?
5. आधुनिक जीवन शैली में वस्त्रों के साथ किस प्रकार हिंसा जुड़ी हुई है?
6. औषधि निर्माण हेतु किस प्रकार की हिंसा होती है?
7. अहिंसक चिकित्सा पद्धति का क्या स्वरूप होना चाहिए और क्यों?
8. उद्योग-धंधे एवं व्यापार का अहिंसा से क्या संबंध हो सकता है?
9. क्या विज्ञान मनुष्य जाति के लिए कल्याणकारी है या सुविधाकारी? स्पष्ट करें।
10. अहिंसा के शिक्षण की क्यों आवश्यकता है?
11. अहिंसा की शिक्षा देने की पात्रता का वर्णन करें।
12. पर्यावरणीय समस्या का अहिंसक समाधान क्या है?

बहुवैकल्पिक

1. अहिंसक जीवन शैली के लिए आवश्यक तत्व है-
   (अ) सुविधावाद (ब) भोगवाद (स) संयम
2. अहिंसा की ओर पहला चरण है-
   (अ) उद्योग धंधे (ब) पशु-पालन (स) विज्ञान
3. मनुष्य के लिए कौन सा प्रोटीन लाभप्रद है-
   (अ) प्राणित प्रोटीन (ब) वनस्पत्ति प्रोटीन (स) रसायनिक प्रोटीन
4. आहार कितने प्रकार का है?
   (अ) तीन (ब) चार (स) पांच
5. जंगली अवस्था में मनुष्य किस प्रकार के वस्त्रों का उपयोग करता था?
   (अ) वृक्षों की छाल, पत्ते आदि (ब) सूती (स) चमड़ा आदि
6. गांधीजी ने किस प्रकार की चिकित्सा पद्धति का समर्थन किया है?
   (अ) आयुर्वेदिक (ब) प्राकृतिक (स) होम्योपैथिक
7. ग्रामोद्योग की निष्पत्ति क्या है?
   (अ) शोषण (ब) बेरोजगारी (स) रोजगार के अवसर
8. 'भौतिक परमाणु से अधिक शक्तिशाली चैतन्य परमाणु है', किसने कहा था?
   (अ) गांधी (ब) विनोबा (स) जयप्रकाशनारायण
9. भारत की वर्तमान अवस्था में कितने प्रकार के रचनात्मक कार्यों को दर्शाया गया है?
   (अ) 20 (ब) 21 (स) 22
10. 'पृथ्वी सम्मेलन' कब हुआ था?

इकाई-4 : पशु-पक्षियों के प्रति क्रूरता एवं विधिक जागरूकता

संरचना

4.0 प्रस्तावना

4.1 उद्देश्य

4.2 धर्म–दर्शनों की दृष्टि

4.3 चिकित्सा के लिए प्राणिवध का औचित्य?

4.4 प्राकृतिक आवास–पशु–पक्षियों का आसरा

4.5 क्रूरता के कारण एवं उदाहरण–

4.5.1 मनुष्य द्वारा पशु–पक्षियों के प्राकृतिक आवास का विनाश।

4.5.2 भोजन, वस्त्र एवं मनोरंजन हेतु शिकार।

4.5.3 क्लोनिंग मानव क्रूरता का एक और उदाहरण।

4.5.4 फैशन, सुख–सुविधाएं एवं पशु–पशियों के प्रति क्रूरता।

4.5.5 औषधियों के आविष्कार एवं निर्माण में पशु हिंसा।

4.5.6 फिल्मों में पशुओं पर अत्याचार।

4.6 वन्य प्राणियों के संरक्षण हेतु कानून

4.6.1 भारतीय वन्य प्राणी (सुरक्षा) अधिनियम, 1972

4.6.2 संविधान का 42 वां संशोधन अधिनियम, 1976

4.7 वन्य जीव संरक्षित क्षेत्र हेतु प्रयत्न

4.8 राष्ट्रीय उद्यान व आश्रय स्थल

4.9 जीवमण्डल आश्रय स्थल

4.10 विशेष परियोजनाएं

4.11 साइट्स

4.12 रेड डाटा बुक

4.13 सारांश

4.14 अभ्यास प्रश्नावली

4.0 प्रस्तावना

भारतीय धर्म दर्शनों में पशु–पक्षियों को किसी तरह की क्षति न पहुंचाने को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। उन्हें भी मनुष्य के समान प्राणवान मानकर स्वयं के समकक्ष स्थान दिया गया है। प्रमुख भारतीय दर्शनों में पुनर्जन्म को मान्यता दी गई है और यह भी स्वीकार किया गया है कि प्रत्येक मनुष्य कभी न कभी पशु–पक्षी के रुप में जन्म ले चुका है। वर्तमान मानव जीवन में भी वह कोई जघन्य कृत्य करता है तो उसे फिर पशु–पक्षी के रुप में जन्म लेना पड़ सकता है। भारतीयेत्तर संस्कृतियों में पशु–पक्षियों को इतना

महत्त्व नहीं दिया गया। बाइबिल आदि धर्म ग्रंथ और अरस्तू, सन्त ऑगस्टाइन, सन्त एक्विनास, डेकार्ट आदि विचारकों ने यह माना है कि पशु पक्षी केवल मनुष्य के लिए हैं। इस मान्यता के परिणाम स्वरुप एवं विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विकास के फलस्वरूप लाखों–लाखों पशु पक्षी प्रति वर्ष या तो मनुष्य के भोजन के लिए काम में लाए जा रहे हैं या फिर प्रयोगशालाओं में उन पर परीक्षण करके इन्हें मार दिया जाता है।

4.1 उद्देश्य

1. पशु–पक्षियों के प्रति हो रही क्रूरता से अवगत करवाना।
2. प्राणि वध के प्रति विभिन्न विचारों की जानकारी देना।
3. पशु–पक्षियों के प्रति हो रही क्रूरता के प्रकारों की मीमांसा करना।
4. औषधियों के आविष्कार एवं निर्माण तथा अन्य वैज्ञानिक प्रयोगों के लिए पशु पक्षियों पर हो रहे अत्याचार की जानकारी देना तथा विकल्पों को खोजना।
5. वन्य प्राणियों के संरक्षण हेतु कानूनों की जानकारी देना।
6. संरक्षण हेतु किये जा रहे प्रयासों की जानाकारी देना।
7. पशु–पक्षियों के प्रति आत्मौपम्य भाव का विकास करना।

4.2 धर्म दर्शनों की दृष्टि

बड़ी संख्या में पशु–पक्षियों के इस विनाश पर अहिंसा के प्रयोग कर्त्रा क्या कहते हैं– यह जानना अप्रासंगिक नहीं होगा। जैन, योग दर्शनावलम्बी एवं अधिकांश महायान बौद्ध तो मांसाहार का पूर्णतः निषेध करते हैं तथा मांसाहार पर प्रतिबन्ध की वकालत करते हैं। वैज्ञानिक अनुसंधानों में पशु पक्षियों का प्रयोग आधुनिक काल में प्रारम्भ हुआ है। मानव जीवनदायिनी औषधियों के अन्वेषणों में पशु पक्षियों का विच्छेदन वैज्ञानिक विकास की ही देन है। स्पष्टतः इन अन्वेषणों में मारे जाने वाले पशु–पक्षियों की मृत्यु पर पुराने धर्म–साहित्य में कुछ भी नहीं कहा गया है। यद्यपि पशु–पक्षियों की बलि का जैन और बौद्धों ने कड़ा प्रतिवाद किया था। पशुबलि और अश्वमेध हिन्दू समाज में प्रचलित रहे हैं। जबकि जैन और बौद्ध समुदाय इसका यह कहकर प्रतिवाद करता रहा है कि किसी भी पशु–पक्षी को मारना अहिंसा के प्रथम और महत्वपूर्ण व्रत का उल्लंघन है। जैन और बौद्धों के इस प्रतिवाद का परिणाम बाद के हिन्दू साहित्य में देखा जा सकता है जहां अहिंसा को जैन और बौद्ध के समान व्यापक मान्यता दी गई। परिणामतः लगभग सम्पूर्ण भारत में (कुछेक क्षेत्रों में छोड़कर) पशु बलि का अन्त हुआ। किन्तु मुस्लिम धर्म में कुर्बानी की परम्परा में प्रतिवर्ष लाखों बेकसूर पशुओं का वध अभी भी किया जा रहा है। 19 अप्रैल, 1997 के इन्दौर से प्रकाशित 'फ्री प्रेस' (Free Press) अखबार में "Four milion beasts slaughter in Haj rituals go waste". समाचार चौंकाने वाला था। 20 लाख हज यात्रियों के लिए 40 लाख भेड़ों, बकरे–बकरियों, गायों तथा ऊंटों को रेगिस्तान में दमकते सूरज की गवाही में मारा जाना और उन मरे हुए जीवों के खून के बीच मनुष्य का घुटनों –घुटनों चलना प्रकृति प्रेमियों के लिए दिल दहलाने वाली घटना।

वैज्ञानिक अनुसंघानों में प्रयुक्त हो रहे पशु–पक्षियों पर जैन और बौद्ध दर्शन की स्थिति पर भी हम विचार करें। दोनों ही दार्शनिक परम्पराएं पशुओं को प्राणवान मानती हैं। पशुओं में अनुभूतियों और संवेगों को भी ये स्वीकार करते हैं। जबकि पश्चिमी चिन्तक इसे मात्र मानवीय आरोपण कहकर झुठला देते हैं। अपने कर्मों के अनुरूप विभिन्न योनियों में जन्म मानव सहित सभी पशु–पक्षियों को एक व्यापक परिवार का अंग बना देते हैं। जैन तो जल, पृथ्वी, वायु आदि को भी सजीव मानकर इसी व्यापक परिवार का अंग मानते हैं। पीर पैगम्बरों वाले धर्म पशुओं को किसी भी तरह अपने समान नहीं मानते और वे प्रयोगशालाओं में परीक्षणों के दौरान पशु वध को स्वीकार कर लेते हैं जबकि जैन और बौद्ध दर्शन में ऐसा सोचा भी नहीं जा सकता। इन दर्शनों की स्पष्ट मान्यता है–मारना एक महा दुराचार है जिसके परिणाम स्वरूप भविष्य में दुःख भोगना होगा।

वर्तमान में किए कर्मों का फल भविष्य में मिलेगा—यह विचार समाज में मनुष्य द्वारा किए गये कार्यों के परिणामों से सीधा नहीं जुड़ता यद्यपि कर्मफल का भय उन्हें उत्तरदायित्वपूर्ण व्यवहार हेतु प्रेरित करता रहता है। कर्म की नवीन व्याख्याएं यह बताती हैं कि एक कार्य का परिणाम केवल उसी व्यक्ति तक सीमित नहीं रहता जो उस कार्य को करता है उसका परिणाम दूसरों को भी भोगना होता है। उदाहरणार्थ, हत्या के लिए दोषी व्यक्ति को कैद की सजा का परिणाम केवल उसे ही नहीं उसके पूरे परिवार को भी भोगना पड़ता है। इसी तरह वैज्ञानिकों द्वारा किए गए कार्य भी सम्पूर्ण समाज को प्रभावित करते हैं। कर्म की यह व्याख्या व्यक्तिगत उत्तरदायित्व को समाप्त नहीं करती किन्तु उस कार्य के सामाजिक आयाम पर भी बल देती है। विज्ञान के उदय से जहां एक ओर मनुष्य को दुःखों से कुछ छुटकारा मिला है वहीं कुछ नये दुःख उसे सौगात में भी मिली है। अर्थात् जो हिंसा वैज्ञानिक विकास में हुई है उस के परिणाम की अनुभूति अप्रत्यक्ष व्यापक रूप से आज हम कर रहे हैं।

4.3 चिकित्सा के लिए प्राणिवध का औचित्य?

यह तर्क दिया जा सकता है कि मानव जीवन को बचाने हेतु औषधियों पर शोध आवश्यक है अर्थात् बीमारियों के विरूद्ध लड़े जाने वाले धर्मयुद्ध में पशुओं की बलि उचित हो सकती है। सामान्यतः जैन कर्म सिद्धान्त इसी तरह की किसी भी हिंसा को उचित नहीं ठहराता। यद्यपि जैन दर्शन ने सामान्य जन के लिए आत्मरक्षार्थ हिंसा को एक सीमा तक निषिद्ध नहीं किया है पर ऐसी हिंसा को हिंसा ही माना गया है। एक मध्यम मार्ग पशुओं के संरक्षण हेतु निकाला गया है जिसके अनुसार दवाईयों के परीक्षण हेतु पशुओं का अत्यन्त सीमित उपयोग तो किया जाता है किन्तु बाद में उनके पुनर्वास और उनको शरण देने की व्यवस्था भी की जाती है। ऐसे कुछ उदाहरण 'Life Force : The World of Jainism' में दिये गये हैं। बौद्ध दर्शन भी एक सीमा तक वैज्ञानिक प्रयोगों को उपयोगी स्वीकार करता है, परन्तु पारमार्थिक दृष्टि से ऐसे किसी भी कार्य को उचित नहीं मानता है। बौद्ध दर्शन के अनुसार न तो वैज्ञानिक, न ही रोगी और न ही पशु अपना स्वतंत्र आत्म स्वभाव रखते हैं। ये सभी ऐसे विभिन्न अंशों के समूह हैं जो उद्भूत होते हैं और मिट जाते हैं। इन सभी को सहयोग की अपेक्षा है न केवल लम्बे जीवन के लिए वरन् क्षणभंगुरता के अनुभव के लिए भी। बौद्धदर्शन के अनुसार मृत्यु से बचना कोई उच्च्य गुण नहीं है। जैन दर्शन के समान ही वहां मृत्यु की गुणवत्ता महत्वपूर्ण है जिसे केवल जीवन को समझकर ही निश्चित किया जा सकता है। जब मृत्यु आ रही हो तो स्वतंत्रता से उसका वरग करें न कि उससे भागें।

इस दार्शनिक विवेचना के पश्चात् यह प्रश्न अभी भी है कि प्रयोगशालाओं में पशुओं की हत्या के प्रति हमारी क्या दृष्टि होनी चाहिए? बौद्ध दर्शन इस प्रश्न के उत्तर के लिए हमारी कुछ सहायता करता है। वहां में तीन तत्वों पर ध्यान देने की बात कही गई है—

1. कार्य का अभिप्राय क्या है?
2. उसको करने के साधन क्या हैं?
3. उस कार्य के परिणाम क्या हैं?

इन तीनों तत्वों पर हम विचार करें तो हम पाएंगे कि पहली श्रेणी में बहुत सी संभावित स्थितियां हैं। इन स्थितियों में से बहुत सी स्थितियां ऐसी हैं जो अनिवार्य नहीं है, उनसे बचा जा सकता है। जैसे—हाईस्कूल स्तर पर जीव—विज्ञान की कक्षाओं में पशुओं की हत्याएं अनावश्यक हैं। इसी तरह से प्रसाधन कम्पनियों द्वारा उत्पादों के परीक्षण में हो रही हत्याएं भी अनावश्यक हैं। केवल अत्यावश्यक स्थितियों जैसे— किसी भयानक बीमारी के टीके के परीक्षण हेतु पशु का प्रयोग सीमित रुप में स्वीकार्य तो है किन्तु इसके विकल्प को भी खोजा जाना चाहिए।

दूसरा पक्ष साधनों का है—क्या परीक्षण के दौरान उनकी पीड़ा को कम किया जा सकता है? क्या परीक्षण की स्थितियों, उससे पूर्व और उसके पश्चात् उनके साथ अच्छा व्यवहार किया जाता है?

तीसरे पक्ष परिणाम पर विचार करें तो यह प्रश्न उभरता है कि क्या वास्तव में जीवन को बचाया जाए? रासायनिक प्रतिक्रियाओं के फलस्वरूप आनुवांशिक गड़बड़ी, कैंसर जैसे असाध्य रोगों की बढ़ती दर के भय से उस उत्पाद का प्रयोग कौन करेगा? क्या ऐसे परीक्षण और अधिक परीक्षणों को बढ़ावा नहीं देंगे? इससे और अधिक जानों के जाने का खतरा नहीं रहेगा? इन सभी शंकाओं को ध्यान में रखते हुए पशुकल्याण से सम्बन्ध रखने वाले बहुत से संस्थान ऐसे किसी भी परीक्षण के लिए पशुओं के प्रयोग पर रोक चाहते

हैं। यद्यपि ऐसे आन्दोलन बहुत थोड़े रूप में हैं परन्तु उनकी भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है। विशेषकर ऐसे समय में जब पशु–पक्षियों पर ऐसे परीक्षण युद्ध सम्बन्धी अनुसंधानों के लिए भी किए जा रहे हैं। अतएव, हमें निश्चित रूप से इन्हें बचाने की संभावनाओं पर विचार करना चाहिए। ऐसा हम भावुकतावश न करें किन्तु हमारी आवश्यकताओं व इच्छाओं का सम्मान करके करें। जीवन मात्र के सम्मान के लिए अन्तर्सम्बन्ध व परस्पर जुड़ाव आवश्यक है। प्राणियों की दुनिया में हम सब एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। हम स्वयं अपना जीवन बचाना चाहते हैं, दूसरे प्राणी भी ऐसा ही चाहते हैं। अतः किसी एक के जीवन को बचाना गौण है।

4.4 प्राकृतिक आवास–पशु-पक्षियों का आसरा

पृथ्वी पर जीवन का प्रारम्भ लगभग 6 अरब वर्ष पूर्व माना जाता है। जीव जगत् में 10 लाख विभिन्न प्रकार के प्राणी एवं 5 लाख से अधिक पेड़–पौधे हैं। सम्पूर्ण जीवन पृथ्वी के जीवमंडल (Bioshpere) तक सीमित है। पृथ्वी के जीव मंडल को कई प्राकृतिक आवासों (Biom) में विभाजित किया जा सकता है। ये प्राकृतिक आवास विशेष प्रकार की जलवायु व भौगोलिक विशेषता वाले क्षेत्रों से बनते हैं जिनमें क्षेत्र विशेष के अनुरूप अनेक प्रकार के प्राणियों एवं पौधों को जीवित रहने में मदद मिलती है। प्राकृतिक आवास जीवों के समुदायों से बनता है जो किसी विशेष जीवन क्षेत्र में एक दूसरे पर प्रभाव डालते हैं। उदाहरणतः उष्ण कटिबंधीय वर्षा वन विविध प्रकार के ऐसे प्राणियों व पौधों का प्राकृतिक आवास है जो वर्षा को जन्म देने वाली परिस्थितियों में रहने के आदी हैं।

32.9 करोड़ हेक्टेअर भूमि, 7516 किमी समुद्री किनारा, सागर, झीलों, नदियों, हिमालय व अन्य पर्वतीय श्रृंखलाओं, रेगिस्तान, पठार, दलदल तथा द्वीप समूहों सहित भारत में न केवल भारी भौगोलिक विविधता है बल्कि इसमें प्राणियों और वनस्पतियों की भी उतनी ही विविध व अद्भुत जातियां पाई जाती हैं।

जीवों, पौधों आदि का जीवित रहना कई बातों पर निर्भर करता है। उचित जलवायु, भोजन, जल व आश्रय, जीवित प्राणियों की मूल आवश्यकताएं हैं। पारिस्थितिक तंत्र, जो प्रकृति में करोड़ो वर्षों के दौरान विकसित हुए हैं इसके जीते जागते उदाहरण हैं कि किस प्रकार प्राणी व पौधे इन संसाधनों का उपयोग करते हैं, प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना करके स्वयं को उनके अनुकूल ढालते हैं और अपने प्राकृतिक आवास के अनुरूप ही जीवनक्षम तथा स्वस्थ आबादी के रूप में पनपते हैं

पारिस्थितिक तंत्र उन विविध प्रकार के जीवों का पालन पोषण करता है जो उसके वातावरण के अनुकूल होते हैं। वे जीव आपसी निर्भरता और आस–पास के परिवेश से सम्बन्धित घटनाचक्र में भाग लेते हैं। उदाहरणतः पौधों द्वारा अर्जित ऊर्जा प्राणियों को प्राप्त होती है, पौधे भूमि से पोषक तत्व लेते हैं जो उनकी मृत्यु या सड़ने गलने के बाद पुनः भूमि में लौट जाते हैं। मृत्यु का स्थान नवजीवन ले लेता है। प्रकृति का यह संतुलन एक ऐसा अबोधगम्य व जटिल प्रदर्शन है जो लाखों वर्षों से वर्ष दर वर्ष चलता आ रहा है।

विकास की प्रक्रिया में अधिक उत्तम और बदलते वातावरण के अधिक अनुकूल जीवों को पनपने देने हेतु प्रकृति कई जातियों का विलोपन करती है– यह सहज है। किन्तु मनुष्य की विनाशकारी गतिविधियों व उसकी क्रूरता के कारण निकट अतीत में कई जातियाँ लुप्त हो गईं, उनका शिकार कर लिया गया, प्राकृतिक संसाधनों के शोषण के दुष्प्रभावों के कारण कई जीव लुप्त हो गए व कई विलुप्त होने के कगार पर हैं। विकास के साथ प्राणियों का ऐसा विनाश और मनोरंजन, फैशन या आवश्यकता के नाम पर पशु पक्षियों के साथ क्रूरता व यातनाएं मनुष्य के ऐसे बर्बर कृत्य हैं जो प्रकृति के सहज स्वाभाविक संतुलन को नष्ट कर देते हैं। इस अध्याय में हमारा विवेच्य विषय पशु पक्षियों के साथ की जा रही मानव की क्रूरता है।

4.5 क्रूरता के प्रकार एवं उदाहरण

4.5.1 मनुष्य द्वारा पशु–पक्षियों के प्राकृतिक आवास का विनाश :

मनुष्य द्वारा स्वयं की बढ़ती जनसंख्या की विकास सम्बन्धी आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए उसने क्रूरतापूर्ण पशु पक्षियों के प्राकृतिक आवासों को क्रूरतापूर्ण तरीकों से तहस–नहस एवं नष्ट किया। इन आवासों का विनाश खेती, आवास और चारागाह जैसी आवश्यकता पूर्ति के साथ लकड़ी एवं अन्य संसाधनों की प्राप्ति हेतु किया गया है। इस विनाश का वन्य जीवों पर

प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है और एक ऐसा वातावरण नष्ट हो गया है जो उन्हें भोजन, प्रजनन क्षेत्र तथा पक्षियों को घोंसले बनाकर अपने बच्चों का पालन करने जैसी सुविधाएं प्रदान करता है। वन्य प्राणियों के पास ऐसी स्थिति में इसके सिवाए अन्य कोई विकल्प नहीं रह जाता कि या तो वे नवीन परिस्थितियों के अनुकूल बनें, पलायन कर जाएं या नष्ट हो जाएं। पशु–पक्षियों की इस क्रूर वास्तविकता के साथ मनुष्य यह विस्मृत कर देता है कि सभ्यताएं वनों से प्रारम्भ होकर रेगिस्तान में समाप्त होती हैं।

भारत में 752.3 लाख हेक्टेयर भूमि को वन क्षेत्र घोषित किया गया है, इसमें से 406.1 लाख हेक्टेयर आरक्षित वन, 215.1 लाख हेक्टेयर सुरक्षित वन, 111.63 लाख हेक्टेयर गैर वर्गीकृत एवं अन्य तरह से वर्गीकृत वन हैं। इन सबके बावजूद भारत में विश्व के मात्र 2 प्रतिशत वन हैं जबकि विश्व की पशु संख्या का लगभग 13% पशु भारत में है। इस वनीय क्षेत्र में निरन्तर कमी आ रही है। चंडीगढ़, दिल्ली, पांडिचेरी, लक्षद्वीप, हरियाणा आदि में उनके कुल क्षेत्रफल का अति नगण्य क्षेत्र वन हैं। जबकि पंजाब, हरियाणा, जम्मू–कश्मीर, पश्चिमी बंगाल, बिहार, राजस्थान के क्षेत्र का कुछ मामूली प्रतिशत ही वन क्षेत्र हैं। स्पष्टतः यह परिलक्षित होता है कि जनसंख्या घनत्व के बढ़ने के साथ वनीय क्षेत्र कम होता चला जाता है और पशु–पक्षियों के इस प्राकृतिक आवास के नष्ट हो जाने से उनकी प्रजातियों व उनकी संख्या में निरन्तर कमी आती जा रही है। भारत में बाघ, सोहन चिड़या, सुनहरी गरुड़ बतख, कश्मीरी बारहसिंघे, कस्तूरी मृग, जंगली भैंसे, घड़ियाल, राजहंस, सफेद चीते एवं बब्बर शेर, सफेद हाथी, सफेद कौअे, आदि वन्य जीवों की प्रजातियां या तो लुप्त हो गई हैं या ये विलुप्ति के कगार पर हैं।

4.5.2 भोजन वस्त्र एवं मनोरंजन हेतु शिकार :

पशु–पक्षियों के प्रति मानवीय क्रूरता का एक और उदाहरण मनोरंजन के लिए इन निरीह जीवों का शिकार है। मनोरंजन, भोजन, फर, खाल, सींग, दांत आदि के लिए मानवीय लिप्सा ने वन्य जीवों का क्रूरतापूर्ण शिकार कर उनके जीवन के लिए एक गंभीर संकट उत्पन्न कर दिया है। भारत में चीते का इतना अधिक शिकार किया गया कि वह लुप्तप्राय हो गया है। जानवरों की खाल के उपयोग के व्यामोह ने बाघ, तेंदुए, हिरण किसीमकेट, मगरमच्छ, सांप एवं सुन्दर पंखों वाले बहुत से पक्षी मनुष्य की क्रूरता के शिकार हुए हैं। हाथी दांत के लिए हाथियों का शिकार तथा सींग के लिए गैंडे का शिकार उनके अस्तित्व को संकट में डाल रहा है। राजा महाराजाओं के समय की आखेट की प्रवृत्ति आज भी देखने को मिलती है। इस आखेट का उद्देश्य मात्र मनोरंजन होता है। इसका ताजा चर्चित उदाहरण प्रसिद्ध सिने अभिनेता सलमान खान द्वारा जोधपुर के आस–पास के क्षेत्रों में हिरणों के शिकार के रुप में देखने को मिला। मनोरंजन के लिए क्रूरताएं कितने वेष बदल कर समाज में प्रविष्ट हो रही हैं उनका कोई वृहत लेखा– जोखा हमारे पास नहीं है। घुड़दौड़, सांडों व मुर्गों की लड़ाई आदि में इन पशुओं को जो यातनाएं दी जाती हैं उनकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते।

मांसाहार की लालसा पशु–पक्षियों के विरूद्ध मानव क्रूरता की जीवन्त दास्तान है। 8 मार्च, 1997 को 'दैनिक नवभारत' पत्र में एक शीर्षक, "मुझे कल काटा जाएगाः आप आमंत्रित हैं, राजधानी के मांस विक्रेताओं द्वारा नृशंसता की इंतहा" मानवीय क्रूरता की पराकाष्ठा को दिखाने वाला एक समाचार था। पुराने भोपाल की सड़कों पर एक निरीह ऊंट को इस बैनर के साथ घुमाया जाना कि उसे कल काटा जाएगा अतः उसके मांस के चटखारों के लिए लोग मांस विक्रेता तक पहुंचे। यह मांसाहार प्रेमियों की बर्बर, असभ्य, वहशी, अशिष्ट विज्ञप्ति थी। जो पशु शुद्ध शाकाहारी है, जो हमारे लिए अपना खून–पसीना एक करता है उसे स्वाद के लिए टुकड़े –टुकड़े कर अपने पेट में डालना वहशियत की हद ही हो सकती है। यह समाचार मात्र एक ऊंट का ही नहीं वरन् हमारे सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक व नैतिक अस्तित्व का भी है।

भोजन एवं व्यावसायिक जरूरतों को पूरा करने हेतु हम कृषि जैसे शब्द को उस समय इसकी सांस्कृतिक गरिमा से सर्वथा अपदस्थ कर देते हैं जब हम कत्ल खानों को Egg Farming, Fish Farming अथवा Tiger Farming की संज्ञा देते हैं। कत्ल के लिए की जा रही मछली, अंडे या बाघ की खेती को हम ऐसे शब्दों के माया जाल द्वारा अपनी क्रूरता को ढकने का प्रयास करते हैं। समाचार एजेंसी यू.एन.आई. ने 18 सितम्बर, 1996 को प्रसारित एक समाचार में पाकिस्तान के दैनिक समाचार पत्रों के हवाले से बताया

कि बेनजीर भुट्टो ने अपने देश के लोगों के बारे में कहा "हम सब भेड़ियों की तरह हैं, हम गोश्त के बहुत शौकीन हैं। हम इतना धड़ल्ले से मांसाहार करते हैं कि हमारा पेट जानवरों का कब्रिस्तान बन गया है।" शाकाहार क्रान्ति के जनवरी, 1997 के अंक के अनुसार चीन में हजारों बिल्लियों को जीवित उबाला जाता है ताकि उन्हें मंहगे रेस्तराओं में खाने पीने के अमीर शौकीनों को परोसा जा सके। यह एक अत्यन्त अकल्पीनय क्रूरतापूर्ण दृश्य होता है।शाकाहार क्रान्ति के ही अक्टूबर 1996, के सम्पादकीय में यह उल्लेख है कि कीट विज्ञानियों के एक सम्मेलन में 15 किस्म के कीट व्यंजनों को परोसा गया। कीटकों को लेकर जो अनुसंधान हो रहे हैं उनसे यह लगता है कि पूरी दुनिया में कीट व्यंजनों की स्वीकृति मिल जायेगी।

इसी तरह वस्त्र आदि के लिए रेशम के कीड़ों की खेती तथा बाघ, सांप आदि की खालों का प्रयोग फर का कोट आदि ने लाखों पशु–पक्षियों को मनुष्य की क्रूरता का शिकार बनाया है एवं अब भी ऐसा होता जा रहा है।

4.5.3 क्लोनिंग : मानव क्रूरता का एक और उदाहरण–

क्लोनिंग का विचार पारिस्थितिकी विनाश का बेचूक नुस्खा है। श्रेष्ठ वर्गीय प्राणी की अनुकृतियां तैयार करने का यह वही तर्क है जिसने विविधता को नष्ट कर उन एकल प्रजातियों के उत्पादन का मार्ग प्रशस्त किया है जो व्याधि व दबावों को झेलने में असमर्थ होते हैं। क्लोनिंग से यह स्पष्ट है कि मनुष्य अब सृष्टिकर्ता की भूमिका में आ रहा है। जैन आगम आयारों में यह कहा गया है कि किसी भी एक प्राणी की हत्या अन्य प्राणियों व स्वयं की भी हत्या है। पशुओं की क्लोनिंग ने मानव की क्लोनिंग के रास्ते खोल दिए और इससे समस्त पारिस्थितिकीय सन्तुलन के सामने एक गंभीर संकट खड़ा हो जाएगा। वंदना शिवा ने इस पर टिप्पणी करते हुए लिखा था–"वास्तविकता यह है कि ये प्रौद्योगिकियां मादा की प्रजनन क्षमताओं को पूरी तरह उन चन्द आदमियों के हाथों में सौंप देती है जो पूंजी और प्रौद्योगिकी को नियंत्रित करते हैं"। हमारी यह जिज्ञासा भविष्य में कैसा क्रूर रूप ले लेगी इस सोच के लिए वर्तमान में हमारे पास समय ही नहीं हैं।

4.5.4 फैशन, सुख–सुविधाएं एवं पशु–पक्षियों के प्रति क्रूरता–

फैशन एवं सुख–सुविधाओं में वृद्धि के लिए भी मनुष्य की क्रूरता पशु–पक्षियों के प्रति दिनों दिन बढ़ रही है। अंगोरा वस्त्र खरगोश अथवा बकरे–बकरियों की तांत से बनाया जाने वाला वस्त्र है। इसी तरह शहतूश शालें तिब्बती कुरंग (मृग) के ऊन से बनाई जाती है। इस ऊन की प्राप्ति के लिए इन मृगों का शिकार किया जाता है। ऐसे एक मृग से लगभग 150 ग्राम ऊन प्राप्त होती है। इसी तरह फर के वस्त्रों के लिए मिंक, खरगोश आदि मुलायम पशुओं की खालें एवं उनके रोएं परिधान बनाने के काम आते हैं। Feather Pillows में नरम पंखों के लिए जीव हत्या की जाती है। इसी तरह रेशमी वस्त्रों का रेशम, रेशम कीट द्वारा आत्मरक्षा हेतु निर्मित कुकून (खोल) को उबाल कर बनाया जाता है। एक वर्ग सेमी. रेशमी वस्त्र के निर्माण में 7 रेशम कीटों के प्राण चले जाते हैं। लगभग 347 ग्राम वजनी रेशमी साड़ी में 3462 रेशमी कीट मौत के घाट उतार दिये जाते हैं। रेशम उत्पादन की सम्पूर्ण क्रिया ही हिंसक एवं क्रूर है। खिलौनें, चूड़ियां, इयररिंग्स आदि के लिए आवश्यक हाथी दांत को हाथियों के शिकार द्वारा प्राप्त किया जाता है। शटल कॉक के पंखों के लिए बतख, चमड़े की वस्तुओं के लिए सांप, मगरमच्छ आदि की हत्या, लाख की चूड़ियां एवं आभूषणों के लिए असंख्य कीड़ों की हत्या, वर्क बनाने के लिए गाय–भैंस की ताजा नर्म आंतों का इस्तेमाल आदि पशु–पक्षियों के प्रति क्रूरता के उदाहरण हैं।

सौन्दर्य प्रसाधनों के साधनों से सुन्दर लगने की लालसा पूर्ति लाखों जीवों की हिंसा द्वारा होती है। शेविंगक्रीम एवं श्रृंगार प्रसाधनों के बनाने में लार्ड का उपयोग होता है। सूअर, भेड़ व मवेशी के इर्द–गिर्द लिपटी वसा को 'लार्ड' कहते हैं। त्वचा क्रीमों के लिए पशुओं के गर्भाशय से निकाले गये प्लेसेन्टा का प्रयोग होता है। श्रृंगार प्रसाधन के साधनों में मिंक आयल, इलास्टिंग, एस्ट्रोजिंग, कार्मिनिन एसिड, चिटीन, कालेजिंग सिस्टिन, फिश लीवर ऑयल आदि का उपयोग होता है। इन पशु उत्पादों के लिए लाखों प्राणी मानव क्रूरता का शिकार होते हैं। उदाहरणार्थः एक पौण्ड कार्मिनिन एसिड प्राप्त करने के लिए 70,000 भृंग मारे जाते हैं। शैम्पू आदि के परीक्षण के लिए प्रयुक्त सैंकेड़ों खरगोश अन्धे हो जाते हैं। उदाहरणतः प्राक्टर एण्ड गैम्बल कम्पनी अपने उत्पादों की गुणवत्ता व

निरापदता का परीक्षण निरीह प्राणियों पर करती है। 'शाकाहार क्रान्ति' के मई–जून 1996 के अंक के अनुसार, "वर्ष 1985 से 1989 की अवधि में इस कम्पनी द्वारा 3 लाख मासूम जीव–जन्तुओं की जानें ली गई। जिलेट ब्लेड की धार की तीक्ष्णता को जांचने के लिए प्रतिवर्ष लाखों खरगोशों की हत्या की जाती है। एक ही खरगोश को कई बार काटा खरोंचा व छीला जाता है जब तक कि वह दम नहीं तोड़ दे। इसी तरह टूथपेस्ट, नेलपालिश, नेल पालिश रिमूवर, डिओड्रेन्ट्स, लिपिस्टिक आदि लाखों जीवों की कब्रगाह पर बनते हैं।

4.5.5 औषधियों के आविष्कार एवं निर्माण में पशु हिंसा

गांधी ने कहा था– 'जिस चीज का मनुष्य पुतला है उसी से इलाज होंगे। पुतला पृथ्वी, पानी, आकाश, तेज व वायु का बना है। इन पांच तत्त्वों से जो मिल सके, लें।शुद्ध शरीर पैदा करने का प्रयत्न सब करें और उसी प्रयत्न में कुदरती इलाज अपने आप मर्यादित हो जाता है।'

औषधियों के आविष्कार में हिंसा के प्रश्न पर विचार करें तो चिकित्सा का वीभत्स रुप सामने आएगा। स्वस्थ पशुओं पर तरह–तरह के प्रयोग किये जाते हैं। उन्हें प्रतिकूल परिस्थितियों में रखकर यह देखा जाता है कि किस दशा में उनका स्वास्थ्य कितना बिगड़ता है और किस सीमा पर जाकर उनकी मृत्यु हो जाती है। पशुओं को दवाइयों से बीमार बनाकर उन्हें भिन्न–भिन्न दवाइयां देकर यह देखा जाता है कि किस औषधि का उन पर क्या प्रभाव पड़ता है, कितने समय में वे रोगमुक्त हो जाते हैं अथवा उनके प्राण चले जाते हैं। ऐसे प्रयोगों के आधार पर आविष्कारकर्ता यह निष्कर्ष निकालते हैं कि कौन सी औषधि किस प्रकार के रोग के लिए हितकर हो सकती है। आधुनिक औषधि शास्त्र ने पशुओं के हिंसक व्यापार में भी खूब वृद्धि की। अमानुषिक चीर–फाड़ एवं निर्दयतापूर्वक प्रयोगों के लिए पशुओं की खरीद फरोख्त की जाती है। उदाहरणार्थ–भारत अमेरिका को बड़ी संख्या में बन्दरों का निर्यात करता है। दवाइयों में पशुओं की चर्बी, रक्त, मांस आदि का प्रयोग होता है। इनकी प्राप्ति के लिए पशुओं को अकाल मृत्यु का सामना करना पड़ता है। मधुमेह रोग हेतु 'इन्सुलिन' का प्रयोग किया जाता है जिसे सुअर, भेड़ या बैल के अग्न्याशय से प्राप्त किया जाता है। औषधियों में प्रयुक्त 'एड्रिनालिन हार्मोन' को सुअर, मवेशी और भेड़ों के अधिवृक्क (एड्रिनल्स) से प्राप्त किया जाता है। एलोपैथिक चिकित्सा में कई प्रकार के एन्जाइम काम में लाए जाते हैं, जो पशुओं के शरीर से ही प्राप्त किये जाते हैं। उदाहरणार्थ–एमीलेस एन्जाइम सूअर के पैन्क्रियाज से प्राप्त किया जाता है जिसका उपयोग स्टार्च को शर्करा में परिवर्तित करने के लिए होता है। कार्टीजोन हार्मोन का प्रयोग औषधियों में व्यापक रूप से होता है इसे भी मवेशियों के लीवर से निकाला जाता है। त्वचा पर लगाई जाने वाली औषधियों में ग्लिसरीन का व्यापक प्रयोग होता है। लागत कम आए इस दृष्टि से पशु चर्बी से ग्लिसरीन का उत्पादन किया जाता है। जिलेटिन पशुओं की झिल्लियों, हड्डियों एवं टेंडन्स (कंडराओं) आदि को उबालकर प्राप्त किया जाता है। इसे 'Blood Product' कहा जाता है। इस जिलेटिन से कैप्सूल तैयार किए जाते हैं। ये चन्द उदाहरण पशुओं के प्रति मानव क्रूरता की कहानी स्वयं कहते हैं।

4.5.6 फिल्में और पशु अत्याचार

जिन फिल्मों में पशु पक्षियों पर दृश्य फिल्माए जाते हैं उनमें प्रयोग में लाए जा रहे पशु–पक्षी के साथ अत्यन्त क्रूरतापूर्ण व्यवहार किया जाता है। यह क्रूरता मनुष्य के मनोरंजन के निमित्त की जाती है।उदाहरणार्थ –फिल्म में घोड़े को जमीन पर गिरते हुए दिखाया जाता है जिसके फलस्वरूप उसका एक पैर टूट जाता है और उसे गोली मार दी जाती है। नृत्य में मगन युगल के चारों ओर उड़ रहे कबूतरों के पंख बांध दिए जाते हैं तथा एक निश्चित ऊंचाई से उन्हें गिराया जाता है और परिणामस्वरूप प्रायः उनकी मौत हो जाती है। एक सांप को गरम सड़क पर चलने के लिए बाध्य किया जाता है जिसके परिणाम स्वरूप वह झुलस कर दम तोड़ देता है और दूसरे दृश्य में दूसरे सांप का इस्तेमाल किया जाता है। नायक को जिस बाघ का बहादुरी से मुकाबला करते हुए दिखाया जाता है उसके मुंह को बिना एनेस्थिसिया के सी दिया जाता है और उसकी किडनियों को दवा से गम्भीर क्षति पहुंचाई जाती है। फिल्मों में मानव पात्रों के घाव, मारधाड़ बनावटी होते हैं। जबकि प्रयुक्त पशु–पक्षियों का असली खून बहता है। जब किसी घोड़े को गिराया जाता है या किसी पक्षी को गोली मारी जाती है या घोड़े को चाबुक मारा जाता है तो ये विशेष प्रभाव की तकनीक के जरिये नहीं होते

वरन् वास्तविक होते हैं। अभिनेत्री जिस एम्वेरियम से टकरा कर बेहोश होने का नाटक करती है उस एम्वेरियम के टूटने पर सभी मछलियों को अपनी जान कुर्बान कर देनी होती है। हमारा मनोरंजन इन निरीह पशु—पक्षियों की जान की कीमत पर होता है।

4.6 भारत में वन्य प्राणियों के संरक्षण हेतु कानून

भारत में वन्य प्राणियों संरक्षण हेतु प्राचीन काल से ही नियम तथा कानून बनाए जाते रहे हैं। प्राचीनतम संहिताबद्ध कानून जो कि वन्य जीवों तथा पर्यावरण की सुरक्षा हेतु लगभग तीसरी शताब्दी ई.पू. निर्मित किया गया था, सम्राट अशोक द्वारा लागू किया गया। परन्तु प्रथम कानून जो कि वन्य जीवों की सुरक्षा हेतु निर्मित कानूनों का अग्रदूत बना 1887 में अंग्रेजों द्वारा लागू किया गया तथा उसे 'वन्य पक्षी संरक्षण कानूनः 1887' का नाम दिया गया। इसी कानून की कमियों को दूर करने हेतु 1912' में ब्रिटिश सरकार द्वारा 'वन्य पक्षी तथा पशु संरक्षण अधिनियम 1912 पारित किया गया। इसी कानून को 'वन्य पक्षी एवं पशु संरक्षण (संशोधन) अधिनियम 1935' के द्वारा संशोधित किया गया।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् संविधान सभा ने संविधान के प्रारूप में 'वन्य पक्षियों तथा पशुओं के संरक्षण' को राज्य सूची में स्थान दिया तथा राज्य विधान सभा को इस विषय पर कानून निर्मित करने का अधिकार दिया गया।

वन्य जीवों के संरक्षण के सम्बन्ध में प्रथम विस्तृत कानून जो कि संसद द्वारा पारित किया गया तथा उसे 9 सितम्बर, 1972 को राष्ट्रपति की स्वीकृति प्राप्त हुई 'वन्य जीव (संरक्षण) कानून 1972' के नाम से जाना गया। इसी अधिनियम में बाद में अनेक संशोधन किए गए तथा वन्य प्राणियों की सुरक्षा हेतु अन्य प्रयत्न भी किए गये जिनका विस्तृत विवेचन यहां दिया जा रहा हैः—

4.6.1 भारतीय वन्य प्राणी (सुरक्षा) अधिनियम, 1972

यह एक व्यापक केन्द्रीय कानून है जिसके अन्तर्गत पक्षी, सरीसृप, उभयचर, कीट, इत्यादि वन्य प्राणी और विशेषकर संकट ग्रस्त जातियों को कानूनी सुरक्षा प्रदान की गई है। इसमें राष्ट्रीय उद्यानों और वन्य प्राणी अभयारण्यों की स्थापना, वन्य प्राणियों, प्राणियों के उत्पादों और ट्राफियों के व्यवसाय का उचित नियंत्रण भी शामिल है। इस अधिनियम के अन्तर्गत दुर्लभ और संकटग्रस्ट जातियों की पांच सूचियां हैं जिन्हें पूर्ण रूप से सुरक्षा प्रदान की जानी चाहिए। साथ ही शिकार की विशेष जातियां भी सूची में दी गयी हैं जिन्हें निश्चित सुरक्षा की आवश्यकता है। इसके लिए विशेष परिस्थितियों में लाइसेंस दिया जा सकता है।

अधिनियम की धारा 9 के अन्तर्गत उन सभी वन्य प्राणियों का शिकार वर्जित है जिनका अधिनियम की सूची 1,2,3 और 4 में उल्लेख किया गया है। वन्य जीव उत्पादों के विक्रेताओं, वन्य जीवों को बन्दी बनाने और अवैध शिकार करने वालों को कठोर दंड देने के लिए कड़े प्रावधान तथा कार्य प्रणालियां भी हैं।

उपर्युक्त सभी धाराओं को लागू करने के लिए अधिनियम में वर्णित है कि इस हेतु

(1) केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त अधिकारी —

(अ) वन्य जीव संरक्षण हेतु एक निदेशक

(ब) अन्य सहायक निदेशक, तथा

(स) ऐसे अन्य अफसरों तथा कर्मचारियों को नियुक्त कर सकता है जिन्हें वह आवश्यक समझता है।

(2) राज्य सरकार द्वारा नियुक्त किए जाने वाले अधिकारी—

(अ) मुख्य वन्यजीव संरक्षक

(ब) अन्य वन्य जीव संरक्षक (1991 के संशोधन द्वारा समाप्त)

(स) अन्य आवश्यक पदाधिकारी

(3) प्रतिनिधित्व का अधिकार—

अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार —

(अ) निदेशक केन्द्र सरकार की पूर्व सहमति से अपने अधीनस्थ अधिकारियों को अपने अधिकारों का प्रतिनिधित्व सौंप सकता है।

(ब) इसी प्रकार मुख्य वन्य जीव संरक्षक, राज्य सरकार की पूर्व सहमति से अपने अधीनस्थ अधिकारियों को अपनी कुछ या सभी शक्तियां सौंप सकता है। इस अधिनियम में समय—समय पर अनेक संशोधन किए गये हैं जिनसे वन्य प्राणियों को अधिक सुरक्षा प्रदान की गई है और कानून का उल्लंघन करने पर सख्त सजा तथा अधिनियम के उल्लंघन की घटनाओं के खिलाफ लोगों को सीधे मुकदमा करने की इजाजत दी गई। इन संशोधनों का विवरण अग्रलिखित है :

(i) वन्यजीव (संरक्षण) (संशोधन) अधिनियम, 1982

(ii) वन्य जीव (संरक्षण) (संशोधन) अधिनियम, 1986

(iii) वन्य जीव (संरक्षण) (संशोधन) अधिनियम, 1991

(iv) वन्य जीव (संरक्षण) (संशोधन) अधिनियम, 1993

4.6.2 संविधान का 42वां संशोधन अधिनियम, 1976

इस संशोधन के द्वारा राज्य के नीति निदेशक तत्वों में अनुच्छेद 48 (क) को जोड़ा गया। इस संशोधन के अनुसार, "राज्य देश के पर्यावरण की संरक्षा तथा उसमें सुधार करने का और वन तथा वन्य जीवों की रक्षा करने का प्रयास करेगा।" इसी संशोधन के द्वारा नागरिकों के मूल कर्त्तव्य भी निर्धारित किए गए। अनुच्छेद 51.क (6) के अनुसार नागरिकों का यह कर्तव्य है कि वे "प्राकृतिक पर्यावरण जिसके अन्तर्गत वन, झील, नदी और वन्य जीव हैं; की रक्षा करे और उनका सम्वर्द्धन करे तथा प्राणी मात्र के प्रति दया का भाव रखे।

C. इसी संदर्भ में 1983 में राष्ट्रीय वन्य जीव संरक्षण क्रियान्वयन योजना का श्रीगणेश किया गया।

D. वन्य जीव संरक्षण हेतु वन्य जीव संरक्षण निदेशालय तथा भारतीय वन्य जीव संस्थान, देहरादून ये दो मुख्य केन्द्रीय अभिकरण स्थापित किए गए हैं जो क्रियान्वयन योजना को निर्धारित व संचालित करने का कार्य करेंगे।

4.7 वन्य जीव संरक्षित क्षेत्र में वृद्धि हेतु प्रयत्न

इस हेतु राज्यों, केन्द्र शासित प्रदेशों तथा गैर सरकारी अभिकरणों का सहयोग लिया जा रहा है। इस योजना के तहत—

(1) राष्ट्रीय उद्यानों, अभयारण्यों और संरक्षण के योग्य अन्य क्षेत्रों का सर्वेक्षण

(2) वन्य जीव शरण स्थलों के लिए प्रबन्ध योजनाएं तैयार करना

(3) राष्ट्रीय वन नीति की समीक्षा

(4) वन्य जीव संरक्षण अधिनियम की समीक्षा एवं आवश्यक संशोधन

(5) संरक्षित प्रजनन एवं पुनर्वास कार्यक्रमों का निर्माण आदि कार्य प्रारम्भ किए गये हैं।

4.8 राष्ट्रीय उद्यान व आश्रय स्थलों की स्थापना

इस समय देश में 412 सेंचुरी, 70 जूलोजिकल पार्क, 19 नेशनल पार्क जो कि कुल वन क्षेत्र का 10 प्रतिशत अथवा 75,763 वर्ग किमी. है। राजस्थान में 4 राष्ट्रीय उद्यान, 25 अभयारण्य तथा 35 सेंचुरी खोली गई है। रणथम्भौर में राज्य का सबसे बड़ा राष्ट्रीय

उद्यान है जहां 'प्रोजेक्ट टाइगर' योजना शुरू की गई है। सरिस्का राष्ट्रीय उद्यान में 'बाघ बचाओ परियोजना' प्रारम्भ की गई है। भरतपुर के पास केवलादेव घाना राष्ट्रीय पक्षी विहार है। यहां दिसम्बर मास में साइबेरिया, ताशकंद, मंगोलिया, नेपाल तथा जर्मनी से विदेशी पक्षी आकर रहते हैं। जैसलमेर तथा बाड़मेर जिलों का बहुत बड़ा भाग राष्ट्रीय मरु उद्यान है। यहां गोडावण पक्षी को बचाने का प्रयत्न किया जा रहा है।

इसके अतिरिक्त असम में काजीरंगा, अरूणांचल प्रदेश में नामदाफा, मणिपुर में केबुल, उत्तरांचल में जिम कोर्बेट, दूधवा तथा कस्तूरी मृग राष्ट्रीय अभयारण्य है। पश्चिम बंगाल का सुन्दरवन राष्ट्रीय उद्यान बाघ संरक्षण के कार्य में संलग्न है।

4.9 जीवमंडल आश्रय स्थलों की स्थापना

यह परिकल्पना यूनेस्को की 'मनुष्य और जीवमंडल योजना' के अंतर्गत साकार हुई। इसके प्रमुख उद्देश्य हैः

(अ) पौधों, प्राणियों और सूक्ष्म जीवों की विविधिता और अखंडता का संरक्षण करना

(ब) पारिस्थितिक संरक्षण और वातावरण के अन्य पक्षों पर अनुसंधान को प्रोत्साहन प्रदान करना और

(स) शिक्षा, जागृति और प्रशिक्षण के लिए सुविधाएं प्रदान करना।

भारत में जीवमंडल आश्रय स्थलों की स्थापना के लिए 14 आदर्श पारिस्थितिक तंत्रों का चुनाव किया जा चुका है जिनमें से 7 की स्थापना की जा चुकी है तथा अन्य निर्माणाधीन है।

4.10 विशेष परियोजनाओं का संचालन

(i) बाघ परियोजना–1 अप्रैल, 1973 को बाघों की आबादी के संरक्षण हेतु इस परियोजना का सूत्रपात किया गया।

(ii) गिर सिंह परियोजना–एशियाई सिंहो का यह अंतिम प्राकृतिक आवास (गुजरात का गिरवन क्षेत्र) बचा है। 1972 में राज्य सरकार ने केन्द्रीय सरकार की सहायता से इस आश्रय स्थल के प्रबन्ध की योजना बनाई तथा उसे क्रियान्वित किया।

(iii) हिमालयी कस्तूरी मृग परियोजना–कस्तूरी मृगों के संरक्षण हेतु यह परियोजना उत्तरांचल के केदारनाथ अभयारण्य में आरंभ की गई।

(iv) मणिपुरथामिन परियोजना'–1977 में इस जाति की सुरक्षा के लिए संरक्षण उपाय प्रारम्भ किये गए।

(v) हांगुल परियोजना–हांगुल हिरण अथवा कश्मीर स्टैग के संरक्षण के लिए राज्य सरकार ने 1970 में यह परियोजना आरम्भ की।

इन परियोजनाओं के अतिरिक्त मगर प्रजनन परियोजना, हाथी परियोजना आदि भी इन प्राणियों के संरक्षण हेतु बनाई गई।

4.11 साइट्स (SITES)

वन्य प्राणियों और पेड़–पौधों की संकटग्रस्त जातियों की अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार उपसंधि (SITES) 1975 से लागू हुई। इसका उद्देश्य वन्य प्राणियों और पेड़–पौधों के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को रोकना है। भारत ने इस उपसंधि पर हस्ताक्षर किए हैं।

साइट्स वन्य जीवन संरक्षण की दिशा में एक बड़ा कदम है क्योंकि यह अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सहयोग प्रदान करता है।

4.12 रेड डाटा बुक

प्रकृति तथा प्राकृतिक संसाधन के अन्तर्राष्ट्रीय संस्थान (IUCN) ने अपने अधीन एक कमीशन की स्थापना की जिसे सरवाइवल सर्विस कमीशन कहा गया। इस कमीशन ने अब तक 5 पुस्तकों का प्रकाशन किया है। इन पुस्तकों में लुप्त हो रही प्रजातियों

के सम्बन्ध में जानकारी उपलब्ध कराई गई है। इन पुस्तकों के लाल पृष्ठों पर उन प्रजातियों का वर्णन हैं, जो कि लुप्त प्रायः जिनकी संख्या अत्यन्त सीमित है, जिनके बचाव के लिए तुरन्त कार्यवाही की जानी चाहिए। सफेद पृष्ठों पर उन प्रजातियों का वर्णन है जो कुछ निश्चित स्थानों पर ही उपलब्ध हैं। उनके नष्ट होने की आशंका है। जिन प्रजातियों की संख्या निरन्तर घटती जा रही है वे पीले रंगों के कागजों पर लिखी गई है तथा ऐसी प्रजातियां जिनके बारे में आशंका है कि वे कम हो रही हैं परन्तु जिनके बारे में पूरा विवरण उपलब्ध नहीं है वे भूरे रंग के कागजों पर प्रकाशित की गई हैं। हरे रंग के कागजों पर वे प्रजातियां तथा उनका विवरण प्रकाशित है जो कि मानवीय प्रयासों के फलस्वरूप बचा ली गई हैं।

राष्ट्रीय स्तर पर भी रेड डाटा बुक बनाई गई है जिसमें राष्ट्र स्तर की जानकारी संग्रहित की गई है। यह एक ऐसा प्रयास है जो संकटग्रस्त वन्य जीवों, वनस्पतियों की वैज्ञानिक विधियों से रक्षा करने के लिए आधारभूत जानकारी उपलब्ध करता है।

4.13 सारांश

मानव जाति ने अपनी विकास योजनाओं एवं अपने आवासों के लिए भी जंगली पशु–पक्षियों के आवास छीन लिए हैं। परिणामतः बहुत सी प्रजातियां लुप्त हो गई हैं और जो पशु–पक्षी बचे हैं वे या तो भयभीत हैं या लुप्त होने की कगार पर हैं।

4.14 अभ्यास प्रश्नावली

निबन्धात्मक

1. पशु–पक्षियों के वध के प्रति धर्म–दर्शनों की दृष्टि को स्पष्ट करें।
2. पशु–पक्षियों के प्रति क्रूरता के विविध प्रकारों का उल्लेख कीजिए।
3. पशु–पक्षियों के संरक्षण हेतु किये जा रहे विधिक प्रयासों का उल्लेख करें।

लघूत्तरात्मक

4. चिकित्सा के लिए प्राणी वध का क्या औचित्य है? स्पष्ट करें।
5. फैशन एवं मनोरंजन के नाम पर पशु–पक्षियों के प्रति हो रही क्रूरता का वर्णन करें।
6. संविधान के 42वें संशोधन में वन तथा वन्य जीवों की रक्षार्थ क्या व्यवस्था की गई है।

वस्तुनिष्ठ

7. प्राकृतिक आवास किसे कहते हैं?
8. वन्य जीव (संरक्षण) कानून कब बना था?
9. साइट्स क्या है?

bdkbZ&5 % vfgalk vkSj 'kkafr] 'kkafr dk Lo:i] vfgalk vkSj fo'o'kkafr] vfgalk lkis{krk ,oa lg&vfLrRo

lajpuk

5.0 प्रस्तावना
5.1 उद्देश्य
5.2 अहिंसा और शांति–विषय प्रवेश
5.3 शांति का स्वरूप
5.3.1 शांति के प्रति विभिन्न दृष्टिकोण
5.3.1.1 संस्थात्मक दृष्टिकोण
5.3.1.2 कार्यात्मक दृष्टिकोण
5.3.1.3 आरोग्यकर दृष्टिकोण
5.4 अहिंसा और शांति
5.4.1 शांति की अमिट चाह
5.4.2 शांति के लिए युद्ध की योजना
5.4.2.1 सेनाओं पर व्यय
5.4.3 शांति प्राप्त करने में हिंसा की असफलता
5.4.4 अहिंसा की ओर झुकाव
5.4.4.1 शांति के लिए सेना में भाग लेना
5.4.5 निरस्त्रीकरण
5.4.6 शांति सेना
5.5 अहिंसा सापेक्षता एवं सह–अस्तित्व
5.5.1 अहिंसा और सापेक्षता
5.5.1.1 अहिंसा के विकास में सापेक्षता का योगदान
5.5.1.2 सापेक्षता के सूत्र
5.5.1.3 सापेक्षता का व्यवहार
5.5.1.3.1 अध्यात्म जगत् में
5.5.1.3.2 सामाजिक क्षेत्र में
5.5.1.3.3 आर्थिक क्षेत्र में
5.5.1.3.4 साम्प्रदायिक सद्भाव के लिए
5.5.1.3.5 अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में
5.5.2 अहिंसा और सह–अस्तित्व का व्यवहार
5.5.2.1 सह अस्तित्व का व्यवहार
5.5.2.1.1 पारिवारिक जीवन में
5.5.2.1.2 सामुदायिक जीवन में
5.5.2.1.3 विश्वशांति के लिए
5.5.2.2 सह–अस्तित्व के सूत्र
5.6 अहिंसा और विश्वशांति
5.7 सारांश
5.8 अभ्यास के लिए प्रश्न

5-0 iLrkouk

इस इकाई में आप शांति के स्वरुप को विस्तार से जान सकेंगे। शांति के स्वरुप को जानकर अहिंसा एवं शांति के अन्तर्सम्बन्धा की स्पष्टता भी आपको हो सकेगी।

अहिंसा से कैसे विश्वशांति सम्भव है तथा अहिंसा की आधार सापेक्षता, सह–अस्तित्व आदि किस प्रकार विश्वशांति की पृष्ठभूमि तैयार करते हैं, यह ज्ञान भी आपको इस पाठ के माध्यम से होगा।

5-1 mís';

इस इकाई के निम्नांकित उद्देश्य हैं–

1. शांति के स्वरूप को जानना
2. शांति के प्रति विभिन्न दृष्टिकोणों को जानना
3. अहिंसा एवं शांति के सम्बन्ध को जानना
4. विश्वशांति के लिए अहिंसा की भूमिका को जानना
5. सापेक्षता, सह–अस्तित्व जैसे वैश्विक मूल्यों के व्यवहार को जानना
6. शस्त्रीकरण एवं शांति सेना के बारे में जानकारी

6-2 vfglk vkj 'kkfr&fo"k; io'k

भगवान् महावीर ने कहा–सच्चं भयवं–सत्य ही भगवान् है। गांधी ने भी सत्य को ही ईश्वर कहा। जहां सत्य है, वहां शांति है। सत्य, अहिंसा और शांति–ये तीनों परस्पर जुड़े हुए हैं–इन्हें पृथक नहीं किया जा सकता। आचार्य महाप्रज्ञ लिखते हैं–'साधन के बिना साध्य की आकांक्षा अपने आपमें एक आश्चर्य है। शांति की चाह एक व्यक्ति के मन में है, एक राष्ट्र के अंतस्तल में भी है। उसके लिए सही साधन का चुनाव करने की ललक दोनों में ही नहीं है। अहिंसा शांति कभी साध्य का साधन है। अहिंसा के बिना शांति संभव नहीं है।

6-3 'kkfr D;k g\&'kkfr dk Lo#i

विभिन्न धर्म–दर्शनों एवं राजनीतिज्ञों ने शांति की अलग–अलग व्याख्याएं प्रस्तुत की है। ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी के अनुसार "शांति" शब्द का अर्थ है–युद्ध से मुक्ति, दो युद्ध शक्तियों में शांति संधि। अर्थात् युद्ध की समाप्ति तथा युद्धरत राष्ट्रों में संधि कर शांति स्थापित की जा सकती है।

पॉनविट्ज का मत है–"हमारे पास युद्ध के विरुद्ध संभावित कारण हो सकते हैं–जब तक हम यह नहीं जानते कि शांति क्या है, कैसे हो सकती है, तब तक ये कारण हमारी सहायता कैसे कर सकते हैं?अर्थात पॉविट्ज के अनुसार युद्ध और शांति का परस्पर सम्बन्ध स्थापित करने से पूर्व कई विरोधाभासों का समन्वय करना अनिवार्य हैं–

1. विगत अनुभवों के आधार पर शांति के सही स्वरुप की समीक्षा।
2. यह जानना कि भविष्य में क्रियात्मक रूप से किस प्रकार शांति स्थापित की जा सकती है तथा
3. श्रेष्ठ प्रकार की शांति की परिभाषा जो अन्ततः प्राप्त करनी है।

क्विंसी राईट के अनुसार–"शांति किसी समाज की यह अवस्था है, जिसमें आंतरिक रूप से इसके सदस्यों तथा बाह्य रूप से इसके अन्य समुदायों के साथ सम्बन्धों में व्यवस्था तथा न्याय का बोलबाला हो।" कुछ समाजशास्त्रियों जैसे लियोहेमन, जुलेस मॉक आदि ने शांति को "युद्ध न हो होने" (Warlessness) के रूप में व्याख्यायित किया है। प्रो. गाल्टुंग ने इस दृष्टिकोण की आलोचना करते हुए शांति से सम्बन्धित दो मित्र अवधाराणाएं दीं–पश्चिमी अवधारणा और पूर्वी अवधारणा। पश्चिमी अवधारणा के अनुसार युद्ध या आयोजित सामूहिक हिंसा का अभाव शांति है। तनाव, शोषण और संरचनात्मक हिंसा के अभाव को भी शांति कहा जा सकता है। शांति से सम्बन्धित इन विचारों को निषेधात्मक शांति की संज्ञा दी जाती है। इसलिए शांति के दूसरे पक्ष भावात्मक शांति पर भी विचार अपेक्षित है।

इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों में शांति का प्रश्न राजनीतिज्ञों, चिंतकों तथा सामान्य नागरिकों में अंतहीन रूप से चर्चित रहा है। सभी उस मार्ग की खोज के लिए प्रयत्नशील हैं, जो उन्हें युद्धों के अंत की ओर ले जाए जनसे हजारों वर्षों से मानवता पीड़ित है। वस्तुतः वे अतीत की खूनी स्मृतियों तथा भविष्य के भयावह संघर्षों के भय से शांति की ओर प्रयाण चाहते हैं।

हम शांति को युद्ध एवं अणु शस्त्रों के संदर्भ में ही न देखें। शांति जो सभी राष्ट्रों के लिए सुरक्षा व खुशहाली लाती है—युद्ध के अभाव से कहीं अधिक है। शांति का संबंध एक ओर व्यक्तिकी विश्वकाया से है जो प्रकृति और संस्कृति से जुड़ी है तथा उम्र, लिंग, जाति, वर्ग और राष्ट्रों में बंटी है। इस जटिल तंत्र का एक अंग दूसरे से सताया जाता है तो हम उसे प्रत्यक्ष हिंसा कह देते हैं। दूसरी ओर शांति का संबंध उस संगठन या व्यवस्था से भी है जिससे अनेक राष्ट्र और समुदाय जुड़े हैं। व्यवस्था की संरचना यदि ऐसी है जिसमें एक पक्ष दूसरे पक्ष से संगठित रूप से सताया जाता है तो वह संरचनात्मक हिंसा है। प्रत्यक्ष हिंसा और संरचनात्मक हिंसा—इन दोनों प्रकार की हिंसा को कम करना शांति का निषेधात्मक पक्ष है, शांति का विधायक पक्ष भी है जो आनंद की पराकाष्ठा पर प्रकाश डालता है। शांति का यह पक्ष कम विकसित है क्योंकि शांति की आवाज जरा मद्धिम ही होती है। मानव सभ्यता के विकास के साथ मानव जाति शांति के इन पक्षों में आनन्द एवं दुःखों की पराकाष्ठा का अनुभव करती आई है।

रोमन दुःख के अभाव मात्र को शांति कहते हैं। वे प्रत्यक्ष हिंसा का निषेध करते हैं पर संरचनात्मक हिंसा को गौण कर देते हैं। इसलिए जब कभी संरचनात्मक हिंसा को बढ़ावा मिलता है, उनके पास सिवाय विलाप के कुछ नहीं रहता। कभी—कभी ऐसी हिंसा को प्रत्यक्ष हिंसा के अभाव के विचार द्वारा संरक्षरण भी मिलता है।, यह पाश्चात्य शांति सिद्धान्त के साथ समस्या है। ग्रीक एवं अरबिक परम्परा का शांति विषयक विचार प्रत्यक्ष हिंसा के स्थान पर संरचनात्मक हिंसा के अधिक विरूद्ध है।

हिन्दू, जैन एवं बौद्ध परम्पराओं में शांति के दो महत्वपूर्ण सिद्धान्त हैं। एक ओर शांति का संबंध वैयक्तिक शांति अर्थात् मन की शांति व आत्मा की शांति से है। दूसरी ओर शांति का संबंध अन्तर्वैयक्तिक संबंधों से है, जिसके अनुसार किसी मनुष्य, प्रकृति, पशु, वनस्पति (जैनों के अनुसार पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु एवं वनस्पति सूक्ष्मतम जीव हैं) आदि के प्रति हिंसा न करना है। पहले सिद्धान्त में शांति का संबंध स्वयं से है जबकि दूसरे सिद्धान्त में शांति का संबंध पर से है यहां अन्तर्वैयक्तिक संबंधों में अहिंसा की महत्वपूर्ण भूमिका है। चाइनीज एवं जापानी परम्पराओं के अनुसार शांति सामंजस्य है, वैयक्तिक संबंधों, संगठनों, समाज, प्रकृति और विश्व में व्यवस्था का बोल बाला है।

शांति के उपर्युक्त विभाजन की ओर देखें तो हमें यह ज्ञात होगा कि हिन्दू, जैन, बौद्ध आदि आंतरिक, अन्तर्वैयक्तिक और प्रकृति की शांति की बात करते हैं जबकि कि ग्रीक, रोमन, ईसाई, मुस्लिम आदि शांति के लिए सामाजिक और विश्व व्यवस्था पर बल देते हैं। ये एकांगी दृष्टिकोण हैं। हिन्दू—बौद्ध आदि इस भ्रम में हैं कि सही व्यक्ति और सही अन्तर्वैयक्तिक संबंध हो जाने से शांति हो जाएगी भले ही व्यवस्था कैसी भी हो? जबकि दूसरे इस भ्रम में है कि व्यवस्था ठीक हो तो उसमें संघर्षरत व्यक्ति को अथवा संघर्ष पर आधारित संबंधों के साथ व्यक्ति को रख दिया जाए तो भी शांति स्थापित हो जाएगी। यद्यपि अब जैन दृष्टिकोण में परिवर्तन आया है। प्रसिद्ध जैनाचार्य महाप्रज्ञ के अनुसार हमें व्यवस्था को भी ठीक करना होगा और मस्तिष्क (आन्तरिक वृत्तियों) को भी ठीक करना होगा। दोनों के समेकित रूप से ठीक होने पर ही शांति स्थापित हो सकती है। यद्यपि आचार्य महाप्रज्ञ प्राथमिकता मस्तिष्क संतुलन को देते हैं।

भारतीय शांति चिंतक सुगतदास के अनुसार सामाजिक और मानवीय विकास की प्रक्रिया को भावात्मक शांति कहा जा सकता है। उसके अनुसार शांति का यह अर्थ गांधी ने प्रारम्भ किया था पर उन्होंने शांति के प्रतिपक्ष हिंसा की व्याख्या पहले की थी। हिंसा से उनका अर्थ केवल शक्ति प्रयोग, खूनी क्रांतिआदि ही नहीं, पर सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक शोषण भी है। भले ही यह शोषण एक राष्ट्र के द्वारा किसी दूसरे राष्ट्र का किया जाए या एक व्यक्ति द्वारा किसी दूसरे व्यक्ति का या किसी पुरुष द्वारा स्त्री का। शांति का रचनात्मक व भावात्मक स्वरुप है—समाज व मनुष्य का समग्र विकास, एकता, सहयोग और स्थिरता। इसलिए एक तरफ तो समाज में हिंसा व शोषण रुकना चाहिए जबकि दूसरी तरफ मनुष्य व समाज का समग्र विकास भी होना चाहिए। यही शांति का समग्र रुप है। शांति का केन्द्र मानवीय मस्तिष्क है, इसलिए अंतिम रूप से शांति व्यक्ति को अनुभव होनी चाहिए। एक व्यक्ति जब शांति की अवस्था में होगा, तब वह केवल अवरोधों व तनावों से ही स्वतंत्र नहीं होगा, वरन् भावात्मक रूप से संतुष्टि व आनन्द का भी अनुभव करेगा। इसलिए शांति का न्यूनतम रूप है—पूर्ण शांति। संक्षेप में शांति का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है—

1. युद्ध या संगठित रूप से सामूहिक हिंसा का अभाव।
2. नकारात्मक शांति-हिंसा के साथ हिंसात्मक संबंधों का अभाव तथा जिसका प्रमुख आधार शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व हो।

3. सकारात्मक शांति जिसमें परस्पर सहयोग हो पर कभी–कभी हिंसा की घटनाएं सम्भव हैं।

4. अवर्गीकृत शांति, जिसमें हिंसा की पूर्ण अनुपस्थिति परस्पर सहयोग के साथ सम्बन्धित हो।

5-3-1 'kkfr d i fr fofHkUu nf"Vdk.k

अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों एवं प्रतिरक्षा सम्बन्धी साहित्य में युद्ध के विकल्प एवं शांति के प्रति दृष्टिकोणों पर कई प्रस्ताव सुझाये गये हैं। इनमें से कुछ युद्ध के कारणों को जानने तथा कुछ अन्तर्राष्ट्रीय विवादों को शांति ढंग से हल करने पर बल देते हैं जबकि कई विभिन्न प्रकार की सुरक्षा नीतियों एवं उपायों की खोज को महत्व प्रदान करते हैं। निम्नांकित तीन दृष्टिकोण अधिकांशतः शांति दृष्टिकोणों के रूप में मान्य हैं– 1. संस्थात्मक दृष्टिकोण 2. कार्यात्मक दृष्टिकोण 3. आरोग्यकर दृष्टिकोण

5-3-1-1 l LFkkRed nf"Vdk.k&शांति स्थापित करने के लिए संस्थाओं का प्रावधान 20वीं शताब्दी से पूर्व नहीं था। संस्थाओं द्वारा शांति स्थापित करना तथा उसे बनाए रखने की प्रक्रिया का विकास इसी शदी की देन है। द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् अन्तर्राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय स्तर पर विभिन्न संस्थाओं का उदय हुआ, जिनका मुख्य उद्देश्य था विश्वशांति बनाए रखना। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के अतिरिक्त विभिन्न देशों के मध्य अनेक संधियों के सम्पन्न होने के परिणाम स्वरूप कई क्षेत्रीय संस्थाओं का भी उदय हुआ। इन संस्थाओं ने स्थानीय विवादों का शांतिपूर्ण वार्ताओं द्वारा निपटारा कर शांति के लिए निरापद मार्ग प्रशस्त करने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। मूलतः संस्थाओं की सफलता इनके उपयोग पर निर्भर है।

5-3-1-2 dk;kRed nf"Vdk.k&यह दृष्टिकोण सुरक्षा संगठनों को स्थापित करने की अपेक्षा सामान्य हितों तथा आत्मनिर्भरता पर बल देता है। पॉमर एवं परकिन्स के अनुसार–"इस दृष्टिकोण का लक्ष्य है–राष्ट्रों के मध्य सहयोग बढ़ाना, जो राजनैतिक स्तर पर लगभग दुर्लभ है।........दूसरी तरफ राष्ट्र आर्थिक, सामाजिक तथा तकनीकी क्षेत्रों में परस्पर साथ मिलकर कार्य करने के इच्छुक हों–ऐसा सहयोग न केवल मूल्यवान है, अपितु इसके द्वारा ऐसा वातावरण तैयार करने में सहायता मिलती है, जिससे राष्ट्रों एवं व्यक्तियों को एकता के सूत्र में बांधा जा सकता है।"

5-3-1-3 vkjkX;dj nf"Vdk.k&यह दृष्टिकोण दूरगामी है, इसके अन्तर्गत गरीबी, भूखमरी, अकाल, जातीय एवं वर्ग शोषण इत्यादि आर्थिक एवं सामाजिक बुराइयों पर सुनियोजित आक्रमण किया जाता है। इन कार्यों के लिए भी अन्तर्राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय एजेन्सियों का ही सहयोग लिया जाता है।

5.4 अहिंसा और विश्वशान्ति

5.4.1 शान्ति की अमिट चाह

हर व्यक्ति शान्ति चाहता है, वह जितनी योजनाएं बनाता है उन सब का लक्ष्य यही होता है कि उसे सुख-शांति मिले। उसके सब कामों में, उसकी तमाम मेहनत-मशक्कत, चिन्ता और परेशानी की पृष्ठ-भूमि शान्ति की इच्छा है। उसका आज का सारा कार्यक्रम इसी हेतु है कि कल उसे आराम मिले। यह बात जैसी व्यक्तियों के समबन्ध में है, वैसी ही समुदायों, समूहों, जातियों और देशों के सम्बन्ध में है। वास्तव में मनुष्य ने जो विविध संगठन बनाये हैं, उनके निर्माण में उसका उद्देश्य शान्ति की चाह ही है। शान्ति के लिए वह समय-समय पर तरह-तरह के अविष्कार और अनुसंधान करता रहा है। उसका सारा इतिहास शान्ति प्राप्त करने के प्रयत्नों का विवरण है।

5.4.2 'शान्ति के लिए' युद्ध की योजना

शान्ति के लिए मनुष्य ने दूसरे मनुष्यों की सेवा की है और उनके लिए कष्ट उठाया है; यही नहीं, उसने मनुष्येतर प्राणियों की भी हित-चिन्तना की है। यहां तक कि अनेक बार उनकी रक्षा के लिए अपनी जान जोखिम में डाली है। परन्तु इसके साथ ही, शान्ति के लिए वह प्रायः—अज्ञान या अदूरदर्शिता के कारण—दूसरों से लड़ता रहा है, मारकाट और हिंसा करता रहा है। युद्ध ठानता रहा है। अनेक राजनीतिज्ञों और राष्टों ने युद्ध के समय यह घोषणा की है कि हम यह युद्ध 'युद्धों का अन्त करने के लिए' कर रहे हैं। अंग्रेजी में यह कहावत ही हो गयी कि 'अगर शान्ति चाहते हो तो युद्ध के लिए तैयार रहो।'

5.4.2.1 सेनाओं पर भयंकर धन-नाश—एक-एक राष्ट्र प्रतिवर्ष करोड़ों नहीं, अरबों-खरबों रुपया सेना और सैनिक सामग्री पर स्वाहा कर रहा है, जिससे वह दूसरे राष्ट्रों के अधिक से अधिक जन-धन को नष्ट कर सके। चाहे अपनी जनता

के लिए भोजन आदि की यथेष्ट व्यवस्था न हो, देश-प्रेमी महानुभाव बढ़-बढ़ कर कहते हैं कि सेना के बजट में कमी न हो, हमारी लड़ने की शक्ति को आंच न आने पाये।

5.4.3 शान्ति प्राप्त करने में हिंसा की असफलता

अज्ञान अथवा अदूरदर्शितावश आदमी यह समझता रहा है कि हिंसक साधनों द्वारा शान्ति प्राप्त हो जाएगी। विरोधी पक्ष के पास जितनी हिंसक सामग्री है, हम उससे अधिक रखेंगे तो वह ठंडा पड़ जाएगा। इस प्रकार आदमी लाठी और गदा से तीर-कमान पर आया, तीर कमान से वह बारूद से चलने वाले अस्त्रों अर्थात् बन्दूक और तोप आदि पर आया। पर शान्ति न हुई। और शान्ति होती भी कैसे! क्या कीचड़ से सने हुए शरीर की सफाई कीचड़ से हो सकती है? दूषित साधनों से अच्छा लक्ष्य प्राप्त करने की आशा भ्रम-मूलक थी। पर आदमी का यह भ्रम बना रहा। एक राज्य ने जो हिंसक अस्त्र बनाये, उसे देखकर या उसकी बात सुन कर दूसरे ने उससे अधिक हिंसक साधन जुटाने की कोशिश की। सन् 1942 में अमरीका ने जापान के दो अत्यन्त समृद्धिशाली नगर हिरोशिमा और नागाशाकी पर अणु बम फेंके थे। जिनसे दोनों शहरों की अरबों-खरबों की सम्पदा राख के ढ़ेरों में बदल गयी थी और अकेले हिरोशिमा शहर में ही एक बम से ढाई लाख मानव प्राणी मर गये थे। उसके सात वर्ष बाद सन् 1948 में रूस ने भी आणविक बमों के सफल प्रयोग किये। आज तो इन बमों के कई विकसित संस्करण कई राष्ट्रों के पास हैं। इस प्रतिस्पर्धा के दुष्चक्र का कैसे अंत हो?

5.4.4 अहिंसा की दिशा में झुकाव

अणु-बम, उद्जन-बम आदि भयंकर हिंसक साधनों की असफलता ने मनुष्य की शांति की भूख बढ़ा दी है। शान्ति प्राप्त करने के लिए उसने अब तक हिंसा को अपनाया था, अब उसे अपनी भूल मालूम हो रही है। वह सोचता है कि जो शक्ति हिंसा में लगायी — और लगाकर भी अपना दु:ख ही बढ़ाया — वह शक्ति कम-से-कम कुछ अंश में अब अहिंसा में लगायी जाए। यह विचार-धारा कई रूपों में प्रकट हो रही है — जैसे सेना में भाग न लेना, रेडक्रास सोसायटी, निरस्त्रीकरण आदि।

5.4.4.1 शान्ति के लिए, सेना में भाग लेना काफी नहीं — कई देशों में शान्तिवादियों का संगठन हुआ है। ये लोग लड़ाई के दौरान खुले-आम चौराहे पर खड़े होकर यह भाषण देने और यह प्रचार करने की हिम्मत करते हैं कि युद्ध के लिए हमारी सरकार भी उतनी ही जिम्मेदार है जितनी विरोधी देश की सरकार, और इसका इलाज यही है कि दोनों तरफ की जनता लड़ाई में भाग लेने से इन्कार कर दे। पर प्रश्न यह है कि क्या ऐसे कार्य से संसार में युद्ध रुक कर शान्ति की स्थापना हो सकती है? गांधीजी ने शान्तिवादियों को लक्ष्य करते हुए कहा था — 'सैनिक-सेवा से इनकार करना ही काफी नहीं है। एक विशेष समय के आ जाने पर सैनिक सेवा से इन्कार करना, बुराई से उस समय टक्कर लेने जैसा है, जबकि उसका समय प्राय: निकल चुका है। सैनिक-सेवा तो उस बीमारी का केवल एक लक्षण है, जो बहुत गहरी है। मेरा सुझाव यह है कि जिन लोगों का नाम सैनिक-सेवा में दर्ज नहीं है, वे भी इस बुराई में भाग ले रहे हैं, अगर वे अन्य प्रकार से राज्य का समर्थन करते हैं। प्रत्येक व्यक्ति जो सैनिक पद्धति से संगठित राज्य का समर्थन करता है — प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से — बुराई में भाग लेने वाला है। जो व्यक्ति सैनिक-सेवा को बन्द करना चाहते हैं, वे अपना सब प्रकार का सहयोग हटा कर ही ऐसा कर सकते हैं। जो पद्धति सरकार का समर्थन करती है, उससे असहयोग करने की तुलना में सैनिक सेवा से इनकार करना बिलकुल नगण्य है।'

5.4.5 निरस्त्रीकरण का मुद्दा

युद्धों को बन्द करने के लिए निरस्त्रीकरण या शस्त्र कम करने या न रखने की बहुत चर्चा हुई है। बड़े-बड़े राष्ट्रों के सभा-सम्मेलन होते हैं, वाद-विवाद होता है, कुछ प्रस्ताव पास होते हैं। विज्ञप्तियां निकलती हैं। परन्तु स्थिति में कोई सुधार नहीं होता। कई बार तो कुछ आशा बंध जाने के बाद फिर निराशा होती है, जिसका जनता पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। वास्तव में जैसा गांधीजी ने कहा है — 'निरस्त्रीकरण उस समय तक स्पष्टतया असम्भव है, जब तक कि बड़ी-बड़ी शक्तियां अपने साम्राज्यवादी उद्देश्यों को न छोड़ें और यह बात उस समय तब, असम्भव प्रतीत होती है जब कि ये बड़े-बड़े राष्ट्र आत्म-नाशक प्रतियोगिता में विश्वास रखना, आवश्यकताओं को बढ़ाने की इच्छा रखना और उसके लिए भौतिक मिल्कियत की वृद्धि करना न छोड़ दें।'

5.4.6 शान्ति-सेना

हम शान्ति चाहते हैं, पर काम अशान्ति के करते हैं। दूसरों को मारने वाली सेनाएं शान्ति-स्थापना नहीं कर सकतीं। शान्ति के लिए तो हमें ऐसा संगठन चाहिए जो दूसरों को जिन्दा रखे, दूसरों की रक्षा करे, चाहे इस काम में अपनी आहुति देनी पड़े। यह संगठन' शान्ति-सेना' कहा जा सकता है।

इस सेना की बात नयी नहीं है। गांधीजी ने कई बार इस का जिक्र किया था। उन्होंने खासकर साम्प्रदायिक परिस्थिति को ध्यान में रखकर इस सेना का सुझाव दिया था। कुछ लोगों का विचार है कि शान्ति-सेना को प्रारम्भ में शान्ति-स्थापना का भरसक प्रयत्न करना है, परन्तु उनका अन्तिम सहारा तो आधुनिक ढ़ंग की सशस्त्र और हिंसाकारी सेना ही है। शांति-सेना के सम्बन्ध की आज तक की कल्पनाओं और योजनाओं से बिल्कुल भिन्न और स्वतंत्र कल्पना विनोबा ने हमारे सामने रखी- "शांति-सेना का सिपाही जाति-निरपेक्ष और धर्म-निरपेक्ष तो होगा ही, याने इन भेदों को न मानने वाला तो वह होगा ही, वह किसी पक्ष का सदस्य भी नहीं रहेगा और न किसी पक्ष के काम में प्रत्यक्ष -अप्रत्यक्ष हिस्सा ही लेगा।"

"शान्ति-सेना का कार्य-उस स्थान की शांति को भंग न होने देना है। उनका काम प्राकृतिक चिकित्सा के समान है। प्राकृतिक चिकित्सा में रोग न हो, इसी का ध्यान रखा जाता है। इस पर भी यदि रोग हुआ, तो उसका इलाज शरीर-शुद्धि ही है। अत: अशांति न होने देना ही हमारा प्रयास रहेगा। फिर भी अशांति होती है, तो ऐसे समय हमारा बलिदान देना कर्तव्य हो जाता है। शांति-सैनिक शांति काल में शिक्षा, भूदान, ग्रामदान, साहित्य आदि का प्रचार करेंगे, स्वच्छता सिखायेंगे, रोगियों की सेवा करेंगे। इस प्रकार की तरह-तरह की सेवा का ज्ञान उनको होगा। लोगों का उन पर विश्वास होगा कोई भी कठिनाई है, तो तुरन्त वे शांति सैनिकों को बुलायेंगे। हमारे सेवक हमको कभी भी मदद करने के लिए तैयार हैं, ऐसा विश्वास उनको होना चाहिए। कोई भी सेवा करने के लिए सदा-सर्वदा तैयार! किसी बुढ़िया का लड़का बीमार है, रात को जागना है। बुढ़िया बुलायेगी, वह जाएगें, रात भर जागेंगे, सेवा करेंगे। ऐसे ह्दयवान् होंगे।" 'शान्ति-सेना के सैनिक को सत्याग्रह के लिए भी तैयार रहेंगे। सत्याग्रही के ह्दय को अनुशासन में रखने का रास्ता अहिंसा के सिवा दूसरा कोई नहीं हो सकता।'

5.5 अहिंसा-सापेक्षता एवं सह-अस्तित्व

अहिंसा का सिद्धान्त आचार के क्षेत्र में प्रतिपादित हुआ। जैन धर्म-दर्शन ने अहिंसा को व्यापकता प्रदान की। जैन केवल शारीरिक अहिंसा तक ही सीमित नहीं रहे उन्होंने बौद्धिक अहिंसा को भी अनिवार्य माना। अनेकान्त इसी बौद्धिक अहिंसा को प्रतिपादित करता है जिसे मूलत: अहिंसा का वैचारिक सिद्धान्त भी कहा जा सकता है। अनेकांत ने अस्तित्व को विरोधी युगलों का समवाय माना तथा इस सत्य का प्रतिपादन किया कि विरोधी युगल सापेक्ष हैं तथा उनके सहअस्तित्व को स्वीकार कर वैचारिक अनाग्रह का विकास किया जा सकता है।

5.5.1 अहिंसा और सापेक्षता

आचार्य महाप्रज्ञ लिखते हैं— "प्रत्येक वस्तु अनेक विरोधी धर्मों का युगल है। हम अखण्ड वस्तु को जान तो सकते हैं पर उससे हमारा व्यवहार नहीं चल सकता। हम जब वस्तु स्वरूप के बारे में कहते हैं तो वस्तु स्वरूप के प्रत्येक उपयोग के पीछे हमारी अपेक्षा जुड़ी होती है। अपेक्षा न जुड़ी हो तो प्रत्येक वचन व प्रत्येक व्यवहार परस्पर विरोधी हो जाएगा। अपेक्षा दृष्टि से वस्तु एक या अनेक नहीं अपितु एक और अनेक का समन्वय है। वस्तु केवल नित्य या अनित्य नहीं है वरन् नित्यता और अनित्यता का समन्वय है। वस्तु केवल भिन्न या अभिन्न नहीं है अपितु भिन्न और अभिन्न का समन्वय है। यदि इस यथार्थता को समझ लिया जाए तो परस्पर के विरोध आसानी से सुलझाये जा सकते हैं।"

5.5.1.1 अहिंसा के विकास में सापेक्षता का योगदान— हिंसा की जड़ विचारों का विरोध है। वस्तु के जितने पहलू हैं उतने ही सत्य हैं, उतने ही उन सत्यों को कहने के तरीके हैं और जितने कहने के तरीके हैं उतने ही मतवाद हैं। मतवादों का ऐकान्तिक दृष्टिकोण विवादों को जन्म देता है और विवाद हिंसा को। जबकि मतवादों में अनेकांतिक दृष्टिकोण या सापेक्ष दृष्टिकोण समन्वय को जन्म देता है और समन्वय अहिंसा को।

एक वक्ता जो शब्द कहता है, वह शब्द उसने कब, कहां और किन परिस्थितियों में कहा है, उसका क्या उद्देश्य है, किस साध्य की प्राप्ति के लिए वह ऐसा कह रहा है, आदि-आदि बिन्दुओं पर जब तक ध्यान नहीं दिया जाता किसी भी व्यक्ति के विचारों के प्रति न्याय नहीं हो सकता। इसलिए सापेक्षवाद कहता है— प्रत्येक धर्म को अपेक्षा के साथ ग्रहण करो क्योंकि सत्य सापेक्ष है। स्वयं के साथ दूसरों को भी समझने की कोशिश करो। यही बौद्धिक अहिंसा है जो सापेक्ष दृष्टि से ही फलित होती है। निरपेक्ष दृष्टिकोण हिंसा का कारण बनता है।

5.5.1.2 सापेक्षता के सूत्र— आचार्य महाप्रज्ञ ने सापेक्षता के निम्नांकित सूत्रों की चर्चा की है—

(क) कोई भी वस्तु या व्यवस्था सापेक्षता की मर्यादा से बाहर नहीं है। प्रत्येक वस्तु व व्यवस्था सापेक्ष होती है पूर्ण नहीं।

(ख) दो विरोधी गुण एक वस्तु में एक साथ रह सकते हैं।

(ग) सभी दृष्टिकोण परस्पर विरोधी नहीं है पर सभी दृष्टिकोण सापेक्ष हैं,एक दूसरे के पूरक हैं।

(घ) एकान्त विरोध या एकान्त अविरोध से पदार्थ व्यवस्था संभव नहीं है। विरोध और अविरोध के समन्वय से ही व्यवस्था संभव हो सकती है।

(ड.) जितने एकान्त या निरपेक्षवाद हैं उनमें दोष भरे पड़े हैं तथा परस्पर विनाश करने वाले हैं। अनाक्रमण, अहस्तक्षेप, स्वमर्यादा का अनतिक्रमण, सापेक्षता ये सामंजस्य के सिद्धांत हैं, जो निरपेक्ष या आग्रही दृष्टि में सापेक्षता और अनाग्रह (समन्वय) को खोजते हैं।

(च) जितने वचन हैं, उतने ही सत्य हैं। प्रत्येक दृष्टि विशाल ज्ञान सागर का अंश है अर्थात् प्रत्येक दृष्टि अपनी-अपनी सीमा में सत्य है।

5.5.1.3 सापेक्षता का व्यवहार—

5.5.1.3.1 अध्यात्म जगत् में—अध्यात्म जगत् में कोई भी व्यक्ति किसी भी जीव के प्रति निरपेक्ष नहीं हो सकता। निरपेक्ष होने का अर्थ है जीवों के प्रति क्रूर होना। अध्यात्म जगत् में सापेक्षदृष्टि कहती है सभी प्राणियों की अपेक्षा करो अर्थात् उनके महत्त्व को समझो। उनकी हिंसा मत करो, उनकी हिंसा मत करवाओ और दूसरा यदि उनकी हिंसा करता है तो उसका अनुमोदन भी मत करो।

5.5.1.3.2 सामाजिक क्षेत्र में—समाज में हमें वैषम्य देखने को मिलता है क्योंकि समत्व का विकास नहीं है। समत्व दृष्टि कहती है-जिस तरह तुम्हें दु:ख अप्रिय है उसी तरह सभी प्राणियों को दु:ख अप्रिय है। बाहरी आवरणों का भेद होने पर भी सब जीवों का भीतरी जगत् एक जैसा है। इसलिए किसी भी जीव को उच्च या निम्न कहने का अधिकार हमें नहीं है।

व्यक्ति और समाज में कभी व्यक्ति को महत्त्व दिया जाता है तो कभी समाज को। यदि अपेक्षा को समझ लिया जाए तो यह भी स्पष्ट हो जाएगा कि कब व्यक्ति को अधिक महत्त्व दिया जाएगा और कब समाज को। व्यक्ति या समाज के प्रति ऐकान्तिक आग्रह ही रहेगा तो वह खिंचाव पैदा करेगा।

समाज का महत्वपूर्ण सूत्र है—''परस्परोपग्रहो जीवानाम्''- जो अनेकांत द्वारा ही फलित होता है। समाज का हर व्यक्ति एक दूसरे को उपकृत करे। ऐसा सापेक्ष दृष्टिकोण न शोषण को जन्म देगा, न अपराध को और न हिंसा को। निरपेक्ष दृष्टि कहती है—कोई व्यक्ति मरे या जिए, भूखा रहे या न रहे इससे दूसरे व्यक्ति को कोई मतलब नहीं होगा। पर परस्परापग्रहो जीवानाम् के सिद्धान्त पर चलने वाला व्यक्ति पड़ोसी की परेशानी से भी परेशान होगा।

5.5.1.3.3 आर्थिक क्षेत्र में—प्रत्येक व्यक्ति में उपार्जन क्षमता है। यह क्षमता हर व्यक्ति की समान नहीं है। इस असमान क्षमता के आधार पर कोई धनी है, कोई गरीब है और उनमें वर्ग भेद है। वर्गभेद समाप्ति के लिए समाजवाद का विकास हुआ पर उसमें दायित्व का बोध नहीं। पूंजीवाद में वैयक्तिकता का विकास है पर उसमें स्वार्थ व शोषण वृत्ति पनपती है। इन सब समस्याओं का समाधान है—स्वामित्व को सापेक्ष बनाएं। भोग के लिए इच्छा परिमाण करें अर्थात् स्वामित्व का सीमांकन करें। सापेक्ष स्वामित्व दोहरी समस्या का समाधान है। एक तो इसमें शोषण वृत्ति बंद रहेगी क्योंकि उचित सीमा के बाद संपत्ति पर उसका अधिकार नहीं होगा एवं उपार्जन की स्वतंत्रता के कारण व्यक्तिगत प्रेरणा भी रहेगी।

5.5.1.3.4 साम्प्रदायिक सद्भाव के लिए—धार्मिक क्षेत्र सम्प्रदायों की विविधता के कारण असामंजस्य की रंगभूमि रहे हैं। सापेक्षवाद कहता है-सभी धर्मों में सत्यांश हैं। समाज व्यवहार या दैनिक व्यवहार की दृष्टि से वैदिक धर्म ठीक है। अहिंसा या मोक्षमार्ग की दृष्टि से जैन धर्म ठीक है। श्रुतिमाधुर्य व करुणा की दृष्टि से बौद्ध धर्म ठीक है। धर्मउपासना पद्धति या योग की दृष्टि से शैव धर्म ठीक है। निरपेक्ष पूर्णता हमारी कल्पना है। पूर्णता सदैव मर्यादित होती है।

सर्व-धर्म सद्भाव की दृष्टि से आचार्य महाप्रज्ञ पांचसूत्र देते हैं—

1. अपनी मान्यता का प्रतिपादन करें पर दूसरों पर आपेक्ष न करें।
2. दूसरे के विचारों के प्रति सहिष्णुता रखें।
3. दूसरे समुदाय या अनुयायियों के प्रति घृणा या तिरस्कार न हो।
4. सम्प्रदाय परिवर्तन करने वालों के साथ अवांछनीय व्यवहार न हो।
5. धर्म के मौलिक तत्त्वों अहिंसा आदि को विश्वव्यापी बनाने का सामूहिक प्रयत्न हो।

5.5.1.3.5 अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में—परिवार, जाति, समाज, राष्ट्र, विश्व ये सभी क्रमिक संगठन हैं। संगठन का अर्थ है—सापेक्षता। बिना सापेक्ष दृष्टिकोण के कोई भी संगठन अधिक दिनों तक नहीं चल सकता। उदाहरणत: एक राष्ट्र दूसरे पर

प्रभुत्व जमाना चाहता है — परिणाम होगा — संघर्ष, अशांति। वैयक्तिक, जातीय, सामाजिक, राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय सापेक्षता, समता, सामीप्य, व्यवस्था, स्नेह, शक्तिवर्द्धन, मैत्री व शांति को जन्म देना।

निरपेक्ष दृष्टिकोण अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में सदैव विषमता पैदा करते आये हैं। अधिकतम व्यक्तियों के लिए अधिकतम सुख के निरपेक्ष दृष्टिकोण ने ही हिटलर को यहूदियों पर अत्याचार का अवसर दिया। बहुसंख्यकों के लिए अल्पसंख्यकों तथा बड़ों के लिए छोटों का बलिदान भी निरपेक्ष दृष्टि का फल है। सापेक्ष नीति कहती है — किसी के लिए किसी का अनिष्ट नहीं किया जा सकता। बहुसंख्यकों के लिए अल्पसंख्यकों की बलि नहीं दी जा सकती। इसी तरह रंग भेद, विचार भेद, व्यवस्था भेद आदि को भी ऐकांतिक या निरपेक्ष दृष्टिकोण के आधार पर स्वीकार नहीं किया जा सकता।

आज विश्व स्वयं सहअस्तित्व के विचार की तरफ बढ़ रहा है, सापेक्षता की तरफ बढ़ रहा है। क्योंकि परमाणविक युग में यही उसका त्राण है। विकसित राष्ट्र विकासशील राष्ट्रों से निरपेक्ष रहकर अपना अस्तित्व दीर्घकाल तक नहीं बनाए रख सकते, उनकी स्वयं की समृद्धि ही उन्हें लील जाएगी। इसलिए विकसित राष्ट्रों ने अविकसित एवं विकासशील राष्ट्रों की सापेक्षता को स्वीकार किया है तथा उनके विकास में सहयोग प्रदान करने की इच्छा प्रकट करते हैं।

5.5.2 अहिंसा और सहअस्तित्व

यह जगत् द्वन्द्वात्मक है। द्वन्द्वात्मक जीवन एक सच्चाई है जो यह बताता है कि विरोधी धर्मों को एक साथ रहना ही चाहिए। विरोधी युगलों का सहअस्तित्व संभव है क्योंकि उनमें सर्वथा विरोध नहीं है, समन्वय के अनेक तत्त्व विद्यमान हैं। महावीर ने कहा — भेद में छिपे अभेद को देखो। तुम जिससे जितने भिन्न हो, उतने ही अभिन्न भी हो और जिससे अभिन्न हो, उससे उतने ही भिन्न हो। जब सभी प्राणियों से भिन्न और अभिन्न हो, तब भेद मानकर किसी को शत्रु क्यों मानते हो? जिसे तुम नीच मानते हो, वह भी तुम्हारे मन का अहंकार है और जिसे तुम उच्च मानते हो, वह भी तुम्हारे मन का अहंकार है। इसलिए उच्चता और नीचता की रेखाएं निर्मित न करो। मनुष्य को तोड़कर मत देखो। मानवीय एकता को मत भूलो। यही सहअस्तित्व का मौलिक आधार है।

एकता अनेकता से पृथक् नहीं है और अनेकता एकता से पृथक् नहीं है। इसी धरातल पर मानवीय एकता संभव हो सकती है। इसी आधार पर भिन्न-भिन्न प्रणालियां एक साथ चल सकती हैं। अनेकता स्वाभाविक है पर शांतिपूर्ण जीवन जीने के लिए सहअस्तित्व अनिवार्य है। दूसरों के स्वत्व को, आत्मसात् करने की भावना को त्यागे बिना सहअस्तित्व संभव नहीं है। एक व्यक्ति, जाति या राष्ट्र जब दूसरों के स्वत्व को हड़प जाना चाहते हैं, तब सहअस्तित्व कैसे संभव हो? सहअस्तित्व के लिए आवश्यक है — स्व का हरण नहीं हो। आज विचारशील व्यक्ति व राष्ट्र दूसरों के स्वत्व से बने विशाल स्वरूप को छोड़कर अपने स्वरूप में सिमटते जा रहे हैं, यही सामंजस्य की रेखा है और यही वर्ग-विग्रह व अन्तर्राष्ट्रीय-विग्रह की समापन रेखा है।

5.5.2.1 सहअस्तित्व का व्यवहार

5.5.2.1.1 पारिवारिक जीवन में — पारिवारिक जीवन तभी सफल हो सकता है जब पारिवार के सदस्यों का शांत सहवास हो। पारिवारिक कलह के लिए पीढ़ीगत भिन्नता, वैचारिक भिन्नता, स्तर की भिन्नता आदि अनेक कारण बनते हैं। फिर भी दो पीढ़ी के लोग, दो विचार के लोग व दो भिन्न जीवन स्तर के लोग एक साथ शांति से रह सकते हैं यदि वे उस भिन्नता में कोई अभिन्नता का बीज खोज लें। यद्यपि पग-पग पर टकराहट है, स्वार्थ है, भिन्नताएं हैं, विरोध हैं पर इनमें समन्वय का प्रयोग शांत सहवास को संभव बना देता है। विरोध किस जगह नहीं होता। अपेक्षा है समन्वय की। यदि विरोध या भिन्नता में समन्वय खोजें तो इन विरोधों व भिन्नताओं के बावजूद सहअस्तित्व संभव हो सकता है।

5.5.2.1.2 सामुदायिक जीवन में — समाज में हमें वैषम्य देखने को मिलता है क्योंकि समत्व का अभाव है। स्वार्थ, मान्यताएं और असहिष्णुता — इन वृत्तियों पर शासन करने वाला ही समन्वय का विकास कर सकता है। पुराने समय में साम्प्रदायिक और जातीय ये दो प्रकार के संघर्ष थे। आज के समाज में वर्ग-संघर्ष है। वर्ग-संघर्ष तब तक नहीं मिट सकता, जब तक स्वार्थ की वृत्ति खत्म न हो। हम स्वार्थ से ऊपर उठकर यह सोचें कि छोटे-बड़े सभी मनुष्यों में एकता है, समानता है। इसलिए हम एक साथ रह सकते हैं। सहअस्तित्व से ही समाज सुन्दर बन सकता है।

5.5.2.1.3 विश्वशांति और सहअस्तित्व — आज राजनैतिक क्षेत्र में सहअस्तित्व की ध्वनि मुखर हो रही है। संयुक्त राष्ट्र संघ भी इसके लिए प्रयास कर रहा है। यह संगठन सहअस्तित्व का एक अच्छा उदाहरण भी है क्योंकि यहां परस्पर विरोधी राष्ट्र एक साथ बैठकर विश्व की ज्वलन्त समस्याओं पर विचार-विमर्श करते हैं।

आज के परमाणविक युग में जब हिंसा समग्र हो गई है और हमारे पास केवल दो ही विकल्प हैं — या तो हम अहिंसा को अपना लें या फिर महाविनाश के लिए तैयार हो जाएं। हिंसा की समग्रता ने सहअस्तित्व की धारणा को और अधिक पुष्ट किया है। आचार्य महाप्रज्ञ कहते हैं- भिन्नता से लड़ाई कब तक करते रहेंगे। युद्ध से तो यह मानव जाति ही समाप्त हो जाएगी। मनुष्य जाति को जीना है तो उसका एकमात्र मार्ग है — सहअस्तित्व।"

प्रभुता की दृष्टि से सभी राष्ट्र स्वतंत्र हैं पर सामर्थ्य की दृष्टि से समानता नहीं है। कोई राष्ट्र शक्तिशाली है, तो कोई कमजोर। कोई समृद्ध है, कोई गरीब। सभी राष्ट्रों में कुछ साम्य भी और कुछ वैषम्य भी। यदि वैषम्य को प्रधान मानें तो दूसरों को मिटाने की बात आएगी और केवल साम्य को प्रधान मानें तो भी ऐकान्तिक आग्रह होगा और उसका परिणाम होगा — शीतयुद्ध। महावीर ने कहा — विरोधी युगलों का सहअस्तित्व संभव है क्योंकि उनमें सर्वथा विरोध नहीं है। इसी विचार के आधार पर पूंजीवाद और समाजवाद एक साथ रह सकता है। लोकतंत्र व एकतंत्र एक साथ रह सकता है। क्योंकि विरोधी प्रणालियों में सहअस्तित्व है।

5.5.2.2 सह-अस्तित्व के तीन सूत्र

सहअस्तित्व के विकास के लिए आचार्य महाप्रज्ञ तीन सूत्र प्रस्तुत करते हैं-

1. **आश्वासन** — एक-दूसरे के प्रति आश्वस्त हों। एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के प्रति, एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र के प्रति। अन्यथा आशंकाएं शीतयुद्ध व संघर्ष को जन्म देगी।
2. **विश्वास** — द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद राष्ट्रों और विशेषकर महाशक्तियों के बीच अविश्वास की जड़ें गहरी हो गईं, उसका परिणाम हुआ-शीतयुद्ध। सहअस्तित्व के लिए अपेक्षित है एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति का व एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र का विश्वास करे।
3. **अभय** — अविश्वास शस्त्र-विस्तार को जन्म देता है, जबकि विश्वास अभय को जन्म देता है। अभय से निशस्त्रीकरण संभव है।

सहअस्तित्व के ये तीनों सूत्र परस्पर जुड़े हुए हैं। आश्वासन से विश्वास पैदा होगा और विश्वास से अभय। उदाहरणत: यदि परमाणु संधि होती है तो वह विश्व को एक आश्वासन होगा, उससे विश्व के राष्ट्रों में विश्वास का वातावरण बनेगा और नागरिक अभय हो जायेंगे।

अत: शांतिपूर्ण जीवन या शान्त-सहवास के लिए सहअस्तित्व का सूत्र बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। जैनों का एक प्रसिद्ध वाक्य है-परस्परोपग्रहो जीवानाम्। प्रकृति का नियम है कि हम परस्पर एक-दूसरे का सहारा बनें। विरोध इसलिए है कि हमने सहअस्तित्व के सूत्र को भुला दिया है। संघर्ष प्रकृति का नियम नहीं, आरोपण है, विसंगति है। सहअस्तित्व में सन्तुलन है, संगति है, इसलिए विरोधी तत्त्वों का भी सहअस्तित्व संभव है। आज यह सूत्र राष्ट्रीय एकता या मानवीय एकता, धार्मिक सहिष्णुता और विश्व-शांति आदि के लिए महत्त्वपूर्ण है। पं. नेहरू ने जब पंचशील के सिद्धान्त में सहअस्तित्व का समावेश किया था, तब इस सूत्र को राष्ट्रों के परस्पर व्यवहार के लिए महत्त्वपूर्ण माना गया था, पर उपेक्षा के कारण आज विश्व विनाश के कगार पर है। परमाणविक युग में सह-अस्तित्व ही शांति एवं व्यवस्था का मार्ग है।

5.6 अहिंसा और विश्वशांति

विश्व का रचनात्मक चिन्तन आज भौतिकवाद, हिंसावाद और आतंकवाद के विरुद्ध जागरूक होकर शांति के नए आयाम खोज रहा है। इसके साथ ही दूसरी ओर वर्तमान काल की भौतिकवादी उपभोक्ता अपसंस्कृति की चकाचौंध में वैचारिक ऊहापोह से संत्रस्त ऐसी विचारधारा भी है जो युद्ध, हिंसा, प्रतिशोध, सत्ता और अधिकार की अन्तहीन महत्त्वाकांक्षा को मनुष्य की प्रकृति का जन्मजात और आवश्यक अंग मानती है। दूसरी ओर एक ऐसा पक्ष भी है जो अहिंसा के सिद्धान्त और दर्शन को चिन्तन के नये धरातल पर प्रतिष्ठित कर उसे केवल धर्म और अध्यात्म का ही नहीं, सामाजिक परिवर्तन, अहिंसक समाज, विश्वशांति सार्वभौम मानवीय परिप्रेक्ष्य में भी स्वीकार कर रहा हैं। आज प्राय: देशों, वर्गो और समाज के प्रबुद्ध चिन्तक यह सवीकार करते हैं कि स्थायी विश्व शांति के लिए आमूल राजनीतिक, सामाजिक आर्थिक व सांस्कृतिक क्रांति की अपरिहार्य आवश्यकता है और वह केवल महावीर, बुद्ध व गांधी की अहिंसा से सम्भव है। यों कहना अधिक संगत होगा कि मानव सभ्यता का भविष्य अहिंसा व शांति पर ही निर्भर करता है। मानव समाज की मूल प्रक्रिया मानवीय अभिप्रेरणा व प्रयोजन की संरचना, शांति सुव्यवस्था और समाजोन्मुखी रही है।

सामाजिक मनोविज्ञान का मूलाधार जिस व्यवस्था और संस्थावाद को प्रमुखता दे रहा है, वह मैत्री, समता और भ्रातृत्व पर ही आधारित है। प्रसिद्ध विद्वान मिल का कथन है कि आज मनुष्य की समस्त चिन्तनधारा विभ्रमित होकर तृतीय विश्व युद्ध को यथार्थ मानकर भ्रमवश विश्व-शांति की सम्भावना स्वीकार नहीं करती। पी. सोरोकिन का भी यही अभिमत है। उसकी दृष्टि में आज सामाजिक व्यवस्था और सांस्कृतिक जीवन मूल्यहीन, प्रत्ययहीन, आस्थाहीन हो गए हैं और चारों ओर स्पर्धा एवं विनिष्टवादी कटुता का बोलबाला वातावरण में है।

आइन्स्टीन ने स्पष्ट कह दिया था, हमें मानवता को याद रखना है जिससे हमारे समक्ष स्वर्ग का द्वार खुल जायेगा अन्यथा सार्वभौम मृत्यु को ही झेलना होगा। कोई अंधी मशीन हमें अपने वज्रदंतों में जकड़ लेगी। 'एक ओर विश्व संहार का भय और आतंक है, तो दूसरी ओर यह मान्यता जोर पकड़ रही है कि रचनात्मक पदार्थवाद और नैतिक मानवीय मूल्यों के मानदण्ड में ही अहिंसक समाज व संस्कृति के लिए स्थायी विश्व शांति के हेतु बन सकते हैं। सामाजिक व सांस्कृतिक विकास आज द्वयर्थक हो रहा है। एक ओर तकनीकी व वैज्ञानिक आविष्कारों ने राष्ट्रों के आचार, विचार, व्यवहार में परिवर्तन कर दिया है तो दूसरी ओर सत्ता व शासन की अमित महत्वाकांक्षाओं ने चुनौतियां उत्पन्न कर तनाव और संघर्ष उपस्थित किया है। कोई राष्ट्र अन्य उन्नत राष्ट्रों से पिछड़ना नहीं चाहता। दूसरी ओर सामान्य जनता शांति, सुव्यवस्था और सामाजिक परिवर्तनों की मांग कर परस्पर सौमनस्य और सौहार्द का आग्रह कर रही है। युद्ध की भयावहता इससे ही स्पष्ट है कि आज संहार अस्त्रों पर तीस हजार डालर प्रति सैकण्ड खर्च हो रहे हैं, जो विशेष जातियों और नस्लों को पहचान कर समाप्त कर देंगे एवं मानवीय इच्छाओं का दमन कर जनता की मानसिकता और आचरण क्षमता को स्वचालित शब्दों में बदल देंगे। इसके विपरीत प्रेमचन्द के शब्दों में 'विश्व-समर का एकमात्र निदान है विश्व-प्रेम।' इस संदर्भ में आज विश्व साहित्य में तकनीकी संस्कृति का घोर विरोध हो रहा है, ब्रूस मेजलिस ने 1980 में लिखा कि 'आविष्कारों की महानता और उनके परिणामों की हीनता की घोर विषमता से मैं हैरान हूं। नारमन फांजिल्स ने कहा कि 'अंतरिक्ष की मानव यात्रा का महत्व यह नहीं है कि मनुष्य ने चन्द्रमा पर पैर रखे पर यह है कि उसकी दृष्टि वहां भी अपनी पृथ्वी पर लगी रही।' यही सोचना है कि मनुष्य की इस सर्वव्यापी चारित्रिक आन्तरिक, बाह्य अस्मिता के संकट से मुक्ति का उपाय अहिंसक क्रांति क्या स्थायी शांति और सुव्यवस्था का प्रमाण बन सकती है? इस पक्ष के साथ-साथ उस अहिंसा की सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक उपयोगिता और इयत्ता पर उन्मुक्त भाव से विचार करने की आवश्यता है।

अणु-बम, उद्जन-बम आदि भयंकर हिंसक साधनों की असफलता ने मनुष्य में अहिंसा की शक्ति की भूख बढ़ा दी है। शांति प्राप्त करने के लिए उसने अब तक हिंसा को अपनाया था, अब उसे वह भूल मालूम हो रही है। वह शक्ति कम-से-कम कुछ अंश में अब अहिंसा में लगायी जाय। यह विचार-धारा कई रूपों में प्रकट हो रही है-जैसे सेना में भाग न लेना, रेडक्रास सोसायटी, निःशस्त्रीकरण आदि।

भारतीय संस्कृति में अहिंसा सर्वमान्य रही है। आदिम युग जिसमें मनुष्य अपनी क्षुधा पूर्ति प्रकृति से कर लिया करता था। कालान्तर में क्षुधा पूर्ति के साधनों की कमी से मनुष्य-मनुष्य के बीच संघर्षो ने जन्म लिया और पहली बार मनुष्य ने इन संघर्षो को समाप्त करने एवं व्यवस्था कायम करने हेतु समाज बनाने की बात सोची। समाज के निर्माण में नेतृत्व का प्रश्न अहं रहा है। मनुष्य-जाति में नेतृत्व किसी शक्तिशाली व्यक्ति को सौंपने की अपेक्षा विवेक सम्पन्न व्यक्ति को सौंपना उचित समझाा। यहां यह कहना अनुचित होगा कि शक्ति की अपेक्षा मनुष्य की बुद्धि को प्रधानता दी गई है। इसी बुद्धि के उपयोग से मनुष्य ने अपने सुख के साधनों में वृद्धि तो की ही साथ ही व्यवस्थाओं को सुचारू रूप से संचालित करने हेतु भी इसे प्रयुक्त किया। दूसरी ओर बुद्धि के प्रयोग से ही वह अहंकार विलासितापूर्ण जीवन, अनावश्यक विवाद आदि में भी उलझा अर्थात वृद्धि का उपयोग रचनात्मक या सृजनात्मक के साथ विध्वंसक कार्यो में भी हुआ।उसके इस पक्ष पर विजय पाने हेतु मानवता का विचार सामने आया जिसमें मनुष्य का मापदण्ड यह माना गया कि वह पर-पीड़ा को देखकर कितना द्रवित होता है। मनुष्य के इस विकासवादी स्वरूप को डार्विन और स्पेन्सर के विकासवादी दृष्टिकोण के परिप्रेक्ष्य में देखें तो हम पायेंगे कि समाज, व्यवस्था और विकास का आधार केवल संघर्ष ही नहीं बल्कि परस्पर उपकार करना भी है। मानव आक्रमण या लूटने-खसोटने का दुर्भाव लेकर नहीं जन्मता। बालक में यह दुर्भाव बाहरी सम्पर्को से पनपता है। जो लोग श्रेष्ठ को ही जीवित रहने का अधिकार घोषित करते हैं, वे एक पक्ष की बात कहते हैं। वे मानव जीवन के सहयोग और पारस्परिक सहायता के उदात्त भावों को भूला देते हैं, जिनके कारण मानव प्रकृति का संतुलन स्थिर है। मानव सब प्राणियों में विशेष बुद्धिमान है और उसे जैसी चाहे शिक्षा दी जा सकती है। अत: जिस दुर्भाव को विद्वानों ने मानव प्रकृति माना है, वह उसकी प्रकृति नहीं है, बल्कि वह वाह्य सम्पर्को से बना हुआ विभाव मात्र है प्रकृतिवादी विद्वानों ने अपनी खोजों से सिद्ध किया है कि मानव मूल में शाकाहारी शांतिमय जीव था-उसका भोजन निरामिष था। बाद में वह अपनी प्राकृत दशा से भ्रष्ट हो गया।

5.7 सारांश

इन सब स्थितियों के आकलन से हमें अहिंसा की प्रगति की आशा है। यह केवल इसलिए नहीं, कि हम विश्व-शांति चाहते हें। सिर्फ हमारी इच्छा की बात नहीं है। मनुष्य के इतिहास और वर्तमान स्थिति पर आ पहुंचने पर अब मनुष्य का अहिंसा की ओर ही मुड़ना उपयुक्त है। काल-चक्र अब अहिंसा की ही ओर ही गति कर रहा है।

5.8 अभ्यास प्रश्नावली

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. शांति के लिए युद्ध की योजना क्या उचित है? संक्षेप में बताइये।
2. शांति के लिए क्या सेना में भाग न लेना ही पर्याप्त है? स्पष्ट कीजिए।
3. अहिंसा के संदर्भ में ''अनेकांत'' को स्पष्ट करें।
4. सापेक्षता के कोई तीन सूत्रों का उल्लेख करें।
5. सर्वधर्मसद्भाव की दृष्टि से सापेक्षवाद के सूत्रों का उल्लेख करें।
6. सहअस्तित्व के विकास के लिए कौन-कौन से सूत्र हैं?
7. निशस्त्रीकरण किन परिस्थितियों में असंभव है?

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. अमरीका ने जापान पर किस वर्ष अणुबम का प्रयोग किया?
2. जापान के किन दो शहरों पर अणुबम गिराये गये?
3. सोवियत रूस ने किस वर्ष अणुबम का सफल प्रयोग किया?
4. शांति सेना की स्वतंत्र कल्पना किसने रखी-
   (क) विनोबा (ख) गांधी (ग) सुभाषचंद्र बोस (घ) इनमें से कोई नहीं
5. बौद्धिक अहिंसा का प्रतिपादन कौनसा सिद्धान्त करता है-
   (क) स्याद्वाद (ख) सत्याग्रह (ग) अनेकांत (घ) नयवाद
6. क्या दो विरोधी गुण एक वस्तु में एक साथ रह सकते हैं?
   (क) नहीं (ख) हां (ग) कहा नहीं जा सकता (घ) असंभव
7. श्रुतिमाधुर्य एवं करुणा की दृष्टि से कौनसा धर्म ठीक है-
   (क) जैन (ख) वैदिक (ग) इस्लाम (घ) बौद्ध
8. ''भेद में छिपे अभेद को देखो'' यह कथन किस का है?
   (क) गांधी (ख) महावीर (ग) बुद्ध (घ) विनोबा
9. अविश्वास का परिणाम क्या है?
   (क) शस्त्रीकरण (ख) निशस्त्रीकरण (ग) परमाणु संधि
10. ''परस्परोपग्रहो जीवानाम्'' किस धर्म से संबंधित वाक्य है?
    (क) बौद्ध (ख) वैदिक (ग) जैन (घ) इस्लाम

निबन्धात्मक प्रश्न

1. हिंसा की असफलता ने अहिंसा की ओर झुकाव को बढ़ाया है, स्पष्ट कीजिए।
2. शांति सेना पर एक लघु निबन्ध लिखिए।
3. अहिंसा और विश्वशांति पर अपने विचार प्रकट कीजिए।
4. अहिंसा और सापेक्षता के संबंध को स्पष्ट करते हुए सापेक्षता के प्रयोग पर विस्तार से प्रकाश डालिए।
5. विश्वशांति के लिए सहअस्तित्व क्यों जरूरी है? सहअस्तित्व के विकास के सूत्रों की चर्चा कीजिए।
6. सहअस्तित्व के प्रयोग पर विस्तार से प्रकाश डालिए।

TEERTHANKER MAHAVEER UNIVERSITY
TMU
MORADABAD

Accredited with NAAC A Grade
12-B Status from UGC

Address: N.H.-9, Delhi Road, Moradabad - 244001, Uttar Pradesh

Admission Helpline No. : 1800-270-1490

Contact No. :+ 91 9520 942111

Email : university@tmu.ac.in